श्रेष्ठ पौराणिक नारियाँ



सामयिक प्रकाशन

३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली ११०००२

श्रेष्ठ पौराणिक नारियाँ

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'



ISBN 81—7138—004—2

मूल्य तीस रुपये
प्रकाशक जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३/८३, जटवाड़ा, दरियागंज
नई दिल्ली ११०००२
संस्करण प्रथम १९८८

कलापक्ष हरिपाल त्यागी
मुद्रक नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस
बलबीर नगर शाहदरा, दिल्ली ११००३२

SHRESHTHA PAURANIK NARIYAN
by Yadvendra Sharma Chandra Price Rs 30 00

मेरी ओर से

हमारे धार्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परिवेश में कुछ ऐसे नारी-चरित्रो का समावेश है जिनका जीवन-चरित्र आठ साल से साठ साल तक के पाठको को नैतिक शिक्षा एव आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देता है। पुराणो मे भी जिनकी प्रशस्ति गाई गई है—ऐसे चरित्रो की शृ खला मे सीता, सावित्री, तारामती, शकुन्तला एव दमयन्ती आदि के नाम ब्रह्माण्ड मे उज्ज्वल एव तेजोदीप्त नक्षत्रो की भाँति जगमगा रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक मे इन्ही प्रेरक नारी-चरित्रो की जीवन-गाथा सहज सरल भाषा मे कही गई है। मुझे आशा है, मेरे इस प्रयास से पाठको को अवश्य ही सही दिशा मिलेगी।

—लेखक

क्रम

श्रेष्ठ
पौराणिक
नारियाँ

सीता

एक दिन की बात है। मिथिला नरेश जनक खेत मे टहल रहे थे, उस समय उन्हे एक नन्ही बच्ची मिली। राजा जनक ने उसे उठा लिया। बच्ची बहुत प्यारी थी। भूमि की दी हुई भूमिजा। जनक ने उसका लालन-पालन किया।

उसका नाम सीता पड़ा।

सीता बुद्धिमान, धैर्यशील और ममता की प्रतिमूर्ति थी।

राजा जनक स्वय शास्त्रो के ज्ञाता और धर्मात्मा और दानी थे।

चूँकि सीता की प्रतिभा विलक्षण थी। इसलिए राजा जनक और उनकी पत्नी सीता का लालन-पालन बडे प्रेम से करते थे।

सीता की चचेरी तीन बहिनें और भी थी। जब वे मिलती थी तब उनके बीच स्नेह का सागर उमड पडता था।

धीरे-धीरे सीता बडी होने लगी।

राजा जनक को उसके विवाह की चिंता होने लगी पर सीता कोई साधारण नारी नही थी। वह विलक्षण गुणो वाली अत्यन्त सुन्दर नारी थी।

उसके लिए वर भी असाधारण प्रतिभा व क्षमतावाला होना चाहिए।

राजा जनक ने उसके लिए स्वयवर का आयोजन किया।

राजा जनक के पास शिवजी का एक अद्भुत धनुष था। वह धनुष किसी भी प्राणी से खिसकाया नही जा सकता था।

राजा जनक ने ढिढोरा पिटवाया कि जो कोई शिव धनुष को तोडेगा, उसे ही सीता का वर माना जायेगा और उसके साथ ही सीता विवाह करेगी।

राजा जनक की इस घोषणा के साथ मिथिला मे बडे-बडे शूरवीर राजाओ का जमघट लग गया। इतना बडा जमावडा सहज नही था। देश-प्रदेश के राजा-महाराजा, राजकुमार और शूरवीर इस स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए आये।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के आश्रम मे आये हुए थे। राक्षस मुनियो को तग करते थे तथा उनके हवनो मे बाधा पहुँचाया करते थे।

जब विश्वामित्र को यह समाचार पहुँचा तब वे भी स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए आये।

उन्हे बडे आदर से ठहराया गया। एक सुन्दर पर्णकुटिया मे राम-लक्ष्मण और महर्षि ठहरे थे।

उसके चारो ओर बगिया थी जिसमे भाति-भाँति के फूल खिले हुए थे। वहाँ का वातावरण बहुत ही अच्छा था।

एक दिन राम उस बगीचे मे प्रात की शीतल हवा ले रहे थे कि उनकी दृष्टि सीता पर पडी।

राम भी उस अद्भुत रूप की सरिता को देख कर स्वय प्रवाहित हो गये।

उधर सीता भी राम पर मुग्ध भाव से दृष्टि जमाकर देखती रही।

प्रणय के अकुर फूटे।

दोनो के हृदय मे जैसे मधुर सगीत बज गया हो।

सीता ने सोचा, मैं इनके योग्य हूँ। यही तेजस्वी और करुणा की प्रतिमूर्ति ही मेरे अनुकूल वर हो सकते हैं।'

राम ने सोचा, 'यह असीम धैर्य की प्रतिमा सीता ही मेरी भार्या होकर मेरे जीवन के सुख-दुख की सहभागिनी हो सकती है।'

दोनों कई क्षणों तक मन्त्रमुग्ध से खड़े रहे।

यदि सहेली आकर सीता का ध्यान भंग नहीं करती तो वह फूल चुनना बिसार कर बस राम को देखती ही रहती।

"क्या कर रही हो सीता ?"

'फूल चुन रही हूँ।"

सहेली ने झट से चुटकी ली, "कौन से फूल चुन रही हो ?"

"धत् ।" सीता लाज से घिर कर भाग गयी।

राम के होंठों पर एक अर्थभरी मुसकान दौड़ गयी।

सीता राम के ध्यान में और राम सीता के ध्यान में सोचते रहे।

अंत में स्वयंवर का दिन आ गया।

राजा जनक का दरबार बड़े-बड़े योद्धा, धर्मात्मा और यशस्वी राजाओं से भरा हुआ था।

तख्ते पर मखमली चादर बिछी हुई थी। उस पर भगवान शिवधनुष रखा हुआ था। देखने में छोटा पर अद्भुत क्षमता वाला था शिव का धनुष।

एक ओर राम लक्ष्मण बैठे थे। दरबार के ऊपर खुले झरोखों में राजा जनक के परिवार की स्त्रियाँ बैठी थीं।

एक झरोखे में सीता अपनी चचेरी बहिनों के साथ बैठी-बैठी राम को देख रही थी।

उर्मिला ने कहा, "पता नहीं, हमारी दीदी के भाग्य में कौन

लिखा है ?"

सीता ने उसकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देख कर कहा, "शिवधनुष को तोडना किसी जनसाधारण का काम नही है। उसे वही तोड सकता है जो महाबली के साथ-साथ पवित्रता और तप का देवता हो।"

राजा जनक ने खडे होकर सबको प्रणाम किया। फिर सभी उपस्थित सज्जनो पर दृष्टिपात करके कहा, "उपस्थित नरेश गण, शूरवीर और पूज्य ऋषिवर! मैंने अपनी बेटी सीता का स्वयवर किया है। मेरा परम सौभाग्य है कि इस स्वयवर मे देश प्रदेशो के बडे बडे राजा महाराजा आये हैं। मैं तो देखकर यह भी कह सकता हूँ कि प्राय सभी महान जन आये हैं। कौन ऐसा भाग्यशाली है जो मेरी बेटी को वरण करेगा। बात स्पष्ट है कि वही मेरी बेटी को वरण करेगा जो इस शिवधनुष को तोडेगा। मैं गुरुजनो श्रेष्ठ मुनियो की आज्ञा से स्वयवर की कार्यवाही आरम्भ करता हूँ।"

सभी गुरुजनो ने राजा को आशीर्वाद दिया।

अब बडे-बडे शूरवीर राजा-महाराजा उठकर शिवधनुष को तोडने की चेष्टा करने लगे। जब वे उठते थे तब ऐसा लगता था जैसे उनके लिए शिवधनुष को तोडना बच्चो का खेल है और वे चुटकी बजाते शिवधनुष को तोड देंगे पर शिवधनुष उनसे हिला तक नही।

जब कोई राजा शिवधनुष को तोडने के लिए उठता था तब सीता उदास हो जाती थी और वह प्रभु से मन ही मन प्रार्थना करती थी कि हे भगवान! यह धनुष टूटे नही। जब नही टूटता तब सीता चैन की एक सास लेती थी।

अत मे उसका धैर्य जाता रहा। उसने उर्मिला से पूछ ही लिया, "उर्मिला!"

"हूँ दीदी।"

"दशरथनन्दन राम धनुष को क्यो नही तोडते ! बैठे-बैठे देख रहे हैं।"

उर्मिला ने तपाक से कहा, "देखने दो, हमारा इससे क्या बनता बिगडता है।"

"तू समझती क्यो नही। कितने सुकुमार और तेजस्वी हैं राम !"

"अब समझी, सुन दीदी, हमारे भाग्य मे जो वर लिखा है, वही मिलेगा ! यह विधाता का लेख है। उसमे परिवर्तन की कोई सम्भावना नही।"

सीता ने उसे मर्मभेदी दृष्टि से देखा फिर वह मुसकरा पडी।

एक-एक करके सारे राजा असफल हो गये। उनकी शूरता, साहस और अभिमान मिटता चला गया, साथ ही राजा जनक भी उदास होते गये। उन्हे लगा कि कही यह शिवधनुष नही टूटा तो उनकी कन्या सीता क्या कुँवारी रहेगी ? वे पीडा से भर आये।

जब सभी राजा निराश हो गये तब राम उठे। सीता के चेहरे पर शान्ति छा गयी। एक मुसकान दौड गयी।

उर्मिला ने उपहास से कहा, "यदि दशरथनन्दन राम ने धनुष नही तोडा तो ?"

सीता ने कहा, "अब शका की जगह वस्तुस्थिति को देखो। राम उठ गये हैं। वे विश्वामित्रजी को प्रणाम कर रहे हैं।"

राम ने सबको प्रणाम किया और मन-ही मन शिव आराधना की। फिर वे शिवधनुष की ओर बढे।

एक बार उन्हाने उपस्थित लोगो को देखो। फिर शिवधनुष को सिर नवा कर देखते-देखते शिवधनुष के टुकडे कर दिये।

सीता और उर्मिला प्रसन्नता के मारे उछल पडी। उनकी

प्रसन्नता का कोई पारावार नही था।

सीता का रोम-रोम प्रणयाभिभूत होकर राम-राम का मान उद्घोष कर उठा।

अपार वैभव के साथ राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न के विवाह सीता और उसकी तीनो बहिनो के साथ हो गये।

सीता सबको भा गयी। वह एक समर्पित स्त्री थी। रात-दिन वह सेवा मे लगी रहती थी। दशरथ से 'लेकर छोटे छोटे दास-दासी भी सीता से प्रसन्न थे।

एक दिन राम और सीता आपस मे वार्ता कर रहे थे। सीता राम के चरण दबा रही थी। राम ने पूछा, 'सीते ! तुम क्या बनना चाहती हो ? तुम्हारी क्या इच्छा है।"

सीता ने मुसकरा कर कहा, "प्रभु ! मैं राममय होना चाहती हूँ। मैं अपने-आपको आप मे विलीन करना चाहती हूँ।

"और मैं भी सीतामय होना चाहता हू।"

"आप पुरुष हैं। आप यदि सीतामय हो गये हैं तो पृथ्वी का भार कौन सँभालेगा ? सुना है, पिताश्री आपको अयोध्या का राजा बनाना चाहते हैं।" इस घोषणा से सभी लोग प्रसन्न हैं। सारी अयोध्या मे खुशी की लहर दौड गयी है।

राम ने मुसकरा कर कहा, "सीते ! किसी के कहने से कुछ नही होता। सभी भाग्य के अनुसार होता है। भाग्य की लीला विचित्र होती है। कल क्या, आनेवाले एक पल का भी किसी को पता नही है। भविष्य अज्ञात होता है।"

"पर जो प्रत्यक्ष है, उसके लिए भी प्रमाण की क्या जरूरत पड़ेगी ?"

"प्रत्यक्ष भी कभी भ्रामक हो सकता है।"

सीता ने कोई उत्तर नही दिया।

पर यह बिलकुल सही निकला कि राम को राज्याभिषेक के बदले चौदह वर्ष का वनवास मिल गया। सारी खुशियाँ असह्य दुख मे बदल गयी।

राम के वनवास प्रस्थान के समय सीता भी तयार हो गयी। उसे सभी ने समझाया कि वनवास का जीवन अत्यन्त ही कठिन होता है पर सीता नही मानी। वह सम्पूर्ण वैभव छोडकर राम के साथ वन मे चली गयी।

वह वनवास के दिनो मे राम की बडी सेवा करती थी। उनके चरणो को धोती थी। उनके पाव दबाती थी। इस तरह सीता राममय होती जा रही थी।

वनवास के दुर्दिन समाप्त ही नही हुए थे कि एक दिन राम और सीता खडे थे। तभी रावण की बहिन शूर्पणखा आयी और वह राम को रिझाने लगी।

राम ने उसे कहा, 'तुम रावण की बहिन हो और मैं सीता का राम। मैं सीता के होते हुए दूसरे विवाह के बारे मे सोच भी नही सकता। मैं मर्यादा का रक्षक हूँ। मर्यादा ही मेरा धर्म है।"

शूपणखा तब लक्ष्मण को रिझाने लगी। लक्ष्मण को उत्तेजना शीघ्र आती थी। उसे क्रोध भी विशेष रूप से आता था।

बातो ही बातो मे उसने शूपणखा की नाक को काट दिया।

नारी के रूप को विकृत करना सीता को अच्छा नही लगा। पर वह लक्ष्मण को कहती भी क्या ?

लेकिन शूर्पणखा ने अपने तिरस्कार की सारी कथा अपने भाइयो को सुनायी।

उसके भाई ने राम-लक्ष्मण को मारने के लिए आ गये।

जब खर-दूषण को राम-लक्ष्मण ने मार डाला तब रावण को आघात लगा। उसने सोचा-विचारा। फिर निश्चय किया

कि वह अपनी बहिन का प्रतिशोध लेगा। रावण ने सीता का हरण करने का विचार कर लिया।

वह मारीच के पास गया। उसे समझा कर और धमकी देकर स्वर्ण-मृग बनने के लिए विवश किया।

मारीच स्वर्ण-मृग बनकर राम कुटिया की ओर गया।

सीता ने उस हिरण को देखा। उस अद्‌भुत और स्वर्ण मृग को देखकर उसके मन में उसे पा जाने की इच्छा जाग उठी।

यह स्त्री-दुर्बलता है कि उसका आकर्षक वस्तु के प्रति मोह जाग्रत हो जाता है। उस दुर्बलता का शिकार सीता भी हो गयी।

उसने राम से कहा, "नाथ! यह मृग कितना सुन्दर है। लग रहा है—स्वर्ण का मृग हो! क्या आप इसे मेरे लिए ला सकते हैं।"

राम ने उस मृग को देखकर कहा, "सीते! यह मृग मुझे विचित्र लग रहा है। ऐसा मृग मैंने नहीं देखा है। कहीं यह माया का न हो?"

पर सीता में नारी हठ जाग गया और उसने राम को मृग लाने के लिए बाध्य कर दिया।

राम चले गए। स्वर्ण मृग उनके जल्दी से हाथ नहीं आया।

बड़ी देर हो गयी तो सीता चिंतित होने लगी। उसने लक्ष्मण से कहा, 'देवरजी! आपके भाई अभी तक नहीं आये क्या बात है।"

'मेरे भाई राम के लिए आप जरा भी चिंता न करें। पृथ्वी पर ऐसा कोई वीर पैदा नहीं हुआ है जो उन्हें जरा भी हानि पहुँचा सके।'

जब सीता राम की चिंता में डूबी हुई थी तब उन्हें सुनायी पड़ा—हा सीते! हा लक्ष्मण!

यह आर्तनाद सुनकर सीता विकल हो गयी।

वह लक्ष्मण से बोली, 'लक्ष्मण! मेरा मन कहता है कि राम संकट में हैं। यह उन्हीं की पुकार है। तुम तुरन्त जाओ और।"

सीता उस ओर बढ़ने लगी पर लक्ष्मण ने उसे रोक दिया। कहा, "माता! संसार में ऐसा कोई नहीं है जो भैया राम को मार सके।" पर सीता का मन नहीं माना। वह लक्ष्मण को बार-बार कहने लगी।

तब सीता ने वाचाल होकर कठोर वचन कह दिये, 'तुम अपने भाई की चिंता नहीं करते हो? शायद तुम दुर्बल हो।"

बस लक्ष्मण आवेश में भर गया। उसने सीता के आगे रेखा बनाकर कहा, "माता! चाहे कोई भी आये पर आप इस रेखा से बाहर न आइएगा।"

लक्ष्मण चला गया।

रावण ने ब्राह्मण का रूप धारण कर रखा था। उसने राम की स्मृति में खोयी हुई सीता को पुकारा—माई! भिक्षा दो।"

कई बार पुकारने के बाद सीता का ध्यान भंग हुआ। उसने उसे भिक्षा देनी चाही पर रावण ने कहा, "माई! मुझे भिक्षा यहीं आकर दो। साधु एक बार आसन जमाकर बैठने के बाद उठते नहीं।"

सीता लक्ष्मण के द्वारा बनायी गयी रेखा से बाहर आने को तैयार नहीं थी। इस पर रावण ने धमकी सी दी—"यदि तुमने मुझे भिक्षा नहीं दी तो मैं भूखा चला जाऊँगा और तुम्हें शाप दे दूँगा।"

सीता डर गयी। इस संकट वेला में ब्राह्मण का भूखा जाना और भी उसके पति का अहित कर सकता है।

वह फल मूल लेकर लक्ष्मण की बनायी हुई रेखा से बाहर

निकली।

वह जसे ही रावण के पास गयी वसे ही ब्राह्मण भेषधारी रावण ने उसे दबोच लिया। सीता घबराकर बोली, "कौन हो तुम दुष्ट !"

रावण अपने असली रूप मे आ गया। उसने कहा, 'मैं लकापुरी का राजा रावण हूँ। राक्षसो का सम्राट ! सुन्दरी ! तुम इस तपस्वी को छोडकर मेरे साथ लका चलो और वैभव-पूण जीवन जिओ।'

सीता रो पडी। उसने छुटकारे का बहुत प्रयत्न किया पर वह छुटकारा नही पा सकी। रावण उसे लेकर विमान द्वारा आकाश मार्ग से चल पडा।

सीता राम राम कहती रही।

वह रोती-चीखती और चिल्लाती रही।

रास्ते मे पक्षीराज जटायु ने जब सीता का करुण क्रन्दन सुना तो वह उडा। जब उसे राम-राम सुनायी पडा तब वह समझ गया कि दुष्ट रावण सीता को ले जा रहा है। दशरथ से मित्रता के कारण वह सीता को अपनी पुत्र वधू मानता था। वह रावण पर झपटता हुआ बोला, "दुष्ट, मिथिलेशकुमारी सीता को छोड दे वर्ना मैं तेरा वध कर दूँगा।"

पर रावण नही माना।

सीता ने भयातुर स्वर मे कहा, 'तात ! मुझे बचाओ मुझे मेरे राम के पास पहुँचा दो मैं राम के बिना मर जाऊँगी।"

जटायु ने उसे सात्वना दी 'डर मत बेटी मैं अभी इस निशाचर को ठिकाने लगाता हू।"

दोनो म भीषण युद्ध होने लगा। बडी देर तक पक्षीराज जटायु रावण को अपने तेज पजो से आहत करता रहा। अन्त मे रावण ने अपने खडग से जटायु के पख को काट डाला।

जटायु घायल होकर जमीन पर गिर गया।

सीता फूट-फूट कर रो पड़ी। वह बार-बार राम राम चिल्ला रही थी।

सीता ने सोचा कि राम को कैसे पता चलेगा कि रावण उसे किधर ले गया है। इसलिए वह रास्ते में अपना एक-एक गहना गिराती गयी ताकि राम इधर से आए तो उन्हें पता चल जाए कि सीता इधर ही गयी है।

रावण का विमान उड़ा जा रहा था।

जब विमान ऋष्यमूक पर्वत पर आया तब उस पर सुग्रीव, हनुमान आदि मंत्रियों के साथ बैठा था।

सीता ने उन्हें देख लिया। वह जोर से चिल्ला पड़ी—हे पर्वत पर बैठे प्राणियो! यदि मेरा राम आये तो उन्हें कहना कि आपकी सीता को पापी राक्षस रावण उठा ले गया है। उसे मेरे गहने दिखा देना वे मुझे पहचान लेंगे।

सीता ने अपने आँचल को फाड़कर उसमें गहने बाँधकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिये।

रावण का विमान अब दक्षिणी छोर पार कर लंका द्वीप की ओर बढ़ गया था।

रावण प्रतिहिंसा की आग के साथ साथ काम-वासना में भी दग्ध था।

उसने सीता को अशोक वाटिका में ठहराया। रावण की बाँदियाँ सीता के लिए तरह-तरह के सुन्दर वस्त्र, बहुमूल्य हीरे और खाने के लिए तरह-तरह के व्यजनें लेकर आईं, पर सीता ने नहीं खाये। उसने उन्हें ठुकरा दिया।

वह अशोक वाटिका में तपस्विनी की तरह रहती थी और प्रायः तप उपवास किया करती थी।

रावण ने कुछ राक्षसी स्त्रियों का पहरा बिठा रखा था। वे कुरूप थी और भयंकर भी। उनके हाथो मे तलवारें, त्रिशूल और फरसे होते थे। वे सब सीता को धमकाती रहती थी और समझाती रहती थी कि वह रावण की पत्नी बन जाएँ वर्ना वे उसे काट कर खा जायेंगी।

राम के वियोग मे दुखी सीता बडी निर्भीकता से कहती, "राम के बिना मैं जीवित रहना ही नही चाहती। हे राक्षसि-नियो, मुझे आप जल्दी से काट कर खा जाओ ताकि इस देह से मेरे प्राण निकल कर राम के पास चले जाए।

एक दिन त्रिजटा नाम की राक्षसिनी आयी। वह धर्म की मर्मज्ञ और मीठे वचन बोलने वाली थी।

उसने एकान्त पाकर सीता को कहा, "तुम्हारे पति और देवर कुशल से हैं। वे तुम्हे शीघ्र ही सुग्रीव की सहायता से छुडवाने आयेंगे।

सीता ने आशका की, "हे सहृदया राक्षसी त्रिजटा, तुम्हारे वचनों पर मुझे विश्वास हो रहा है पर मुझे उस पापी से हर समय भय बना रहता है। कही यह पापी मेरे सतीत्व को कलंकित न कर दे। मैं जानती हूँ कि पतिव्रताओ के तन की आच से पापी भस्म हो जाते हैं पर राक्षसो के अपने अलग मन्त्र-तन्त्र होते हैं।"

त्रिजटा ने सीता की ओर गभीर दृष्टि डालकर कहा, "सीता! रावण तुम्हारा कुछ भी नही बिगाड सकता। उसे नलकूबर ने शाप दिया हुआ है। एक बार नलकूबर की पत्नी रम्भा का जबरदस्ती स्पर्श किया तो वह कुपित हो गया और उसने शाप दिया, वह किसी भी परस्त्री को विवश कर कलंकित नहीं कर सकता। करेगा तो भस्म हो जायेगा।"

सीता ने त्रिजटा का हाथ पकड कर गहरा नि श्वास लेकर कहा, "तुमने मेरे मन की चिन्ता को मिटा दिया।"

त्रिजटा ने फिर कहा, "सीते ! मैंने सपने मे रावण का पतन देखा है। तुम्हारे पति अवश्य ही विजयी होंगे।"

सीता को पति के विजयी होकर आने की वात से वडा सुख मिला।

उसी समय रावण की दासियाँ रावण को बुला लायी। रावण ने फिर ललचाया तो सीता ने कहा, "राक्षसराज ! तुमने मुझे वार-वार अपनी रानी वनाने के लिए कहा। ऐसा कहकर तुम अपनी वाणी और मेरे कानो को क्यो अशुद्ध करते हो। मैं सीता राममय हूँ। पतिव्रता हूँ। मेरे रोम-रोम मे राम शब्द बसा हुआ है। तुम मुझे कभी भी नही पा सकोगे।"

रावण वडवडाता हुआ चला गया।

अनेक दिन बीत गये।

राम का कोई सदेश नही आया। सीता राम के वियोग के इतनी दुखी हो गयी कि उसने सोचा कि अब राम नही मिलेंगे।

इधर रावण के अत्याचार भी वढ गये थे। सीता को अत्याचारो की चिंता न थी। चिंता थी तो अपने राम से मिलने की।

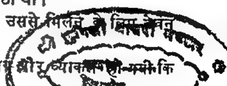
सीता अशोक वाटिका मे घूमती हुई एक वृक्ष के नीचे आकर खडी हो गयी।

उस वृक्ष पर रामदूत हनुमान छुपे बैठे थे। राम की सुग्रीव से मित्रता होने के वाद वाली का वध हुआ। फिर सुग्रीव के वीर वानर सीता की खोज मे लग गये। हनुमान पहले राम-भक्त थे जो लका मे पहुँच गये।

तब सीता वक्ष तले चुपचाप बैठी थी।

ऊपर हनुमान जो पेड पर बैठे उससे मिलने के लिए बेचैन थे।

सीता इतनी राम-वियोग मे व्यग्र और व्याकुल हो गयी कि



आत्महत्या करने की ठान ली। तभी हनुमान ने राम वृतांत सुनाना शुरू कर दिया। राम के बारे में सारी बात सुनकर सीता ने ऊपर की ओर देखा तो हनुमान बैठे दिखायी दिये।

उन्हें देखकर सीता 'हा राम' 'हा लक्ष्मण' कहके रो पड़ी।

हनुमान कूदकर उनके पास आये।

सीता ने आँसू पोंछकर पूछा "आप कौन है ?"

हनुमान ने अपना परिचय बताकर कहा, "मैं रामदूत हनुमान हूं।"

हनुमान ने अनेक तरह से विश्वास दिलाकर राम नाम अंकित मुद्रिका सीता को दी तो सीता के मन में जरा भी सन्देह नहीं रहा।

हनुमान ने सीता को अपने कंधे पर ले जाना चाहा पर सीता ने इस तरह जाने में कई संकट के आने की आशंका बतायी।

महाबली हनुमान ने फिर सारी वाटिका उजाड़ डाली। पहरेदार भागे-भागे रावण के पास गए और हनुमान की सारी उद्दंडता को बताया। रावण ने तुरन्त अपने वीर राक्षसों को भेजा। उन्होंने हनुमान को पकड़ लिया। रावण-हनुमान के बीच उग्र वार्तालाप हुआ। अंत में रावण ने हनुमान की पूंछ को कपड़े से लपेटकर तेल डाला और उसमें आग लगा दी। बस हनुमान ने देखते ही देखते सारी लंका को आग की लपेटों में झोंक दिया और समुद्र में कूदकर अपनी पूंछ बुझा दी।

सीता को पहली बार लगा कि उसके परमात्मा राम और भ्रातृभक्त देवर लक्ष्मण मिल जायेंगे।

सीता के मन का भय कम हो गया। उसने सोच लिया कि अब इस राक्षसराज रावण की रक्षा कोई नहीं कर सकता। "मेरे राम भी शान्त और सन्तुष्ट हो गये होंगे। क्योंकि वीर

हनुमान ने मेरा चूडामणि राम के हाथो मे दिया होगा। वे उसे पहचान गए होगें क्योकि वह चूडामणि मेरे विवाह का स्मृति-चिह्न है।

सीता विभिन्न विचारो मे खोयी रही।

फिर भी रावण ने अपने प्रयास कम नही किये। वह बार-बार अपनी राक्षसी दासियो को भेजता था और सीता को उसकी रानी बनने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन दिलाता पर सीता तो ऐसी थी जो सिवाय राम राम के कुछ भी नही कहती थी।

उस दिन रावण फिर आया।

विभीषण के मन मे राम के प्रति जो अनुराग भरे भाव थे और रावण की नीतियो का जो विरोध था उससे उसके भीतर की उद्विग्नता बढ गयी थी।

यदि नलकूबर का शाप नही होता तो वह सीता का जबर-दस्ती शीलभग कर देता। हर घडी दुश्चिन्ता के कारण रावण बौखला गया।

वह आया और उसने धमकी दी कि यदि वह उसकी बात नही मानेगी तो वह उसके राम-लक्ष्मण का वध करके उसके उसके सामने ला देगा।

सीता ने रावण को ओर घृणा भरी दृष्टि से देखकर कहा, "राक्षसराज! मैं बार-बार भ्रम का शिकार नही हो सकती। मेरे राम को कोई नही मार सकता। फिर तुम्हारे जैसा कामी कीट और दुराचारी उनका बाल भी बाँका नही कर सकता।"

रावण हार गया। वह क्रोध मे फुफकारता हुआ चला गया।

त्रिजटा एक बेल के पीछे छुपी थी।

जैसे ही रावण गया वैसे ही उसने आकर कहा, "सीते!

तुम्हें अब जरा भी नही घबराना चाहिए। राम को पता चल गया है कि तुम यहाँ हो ! अब लका की सुरक्षा नही। एक वीर हनुमान ने ही सारी लका को आग की लपटो मे झोक दिया। फिर यदि स्वय राम आ गये तो इस दुराचारी को समाप्त करने मे क्या देर लगेगी।"

"त्रिजटा ! यदि तू नही होती तो मैं अधीर हो जाती। तूने मुझे बडी सान्त्वना और शांति पहुँचायी है।"

त्रिजटा ने कहा, "सीते ! मनुष्य अपनी वृत्तियो से देव-दानव होता है और उसी के अनुसार वह अपने कर्मों का फल पाता है अब अधिक दिन तुम्हें प्रतीक्षा नही करनी पडेगी। तेरे राम आते ही होगे।"

सीता ने टपटप अश्रु गिराये और राम-राम कहने लगी।

सीता प्रतीक्षारत थी। उधर लका पर चढाई करने की योजना बनायी जाने लगी। लका तक पहुँचने मे समुद्र पार करना पडता था अत विश्वकर्मा के दक्ष और शिल्पी पुत्र नल ने काठ-पत्थर की सहायता से पुल बना दिया। विभीषण राम की सहायता कर ही रहा था। वह सबसे पहले सागर पार गया। इसके बाद राम लक्ष्मण अपनी वानर-सेना के साथ लका पर चढाई कर बैठे।

राम ने युद्ध आरभ करने के पहले सीता का ध्यान किया और लका पर आक्रमण कर दिया।

युद्ध मे रावण के महान् योद्धा निरन्तर तेरह दिन तक लडते रहे। महारथी धूम्राक्ष, वज्रद्रष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त, मेघनाद कुम्भकर्ण, त्रिशिरा, देवान्तक आदि विकट योद्धा मारे गये। यह युद्ध तेरह दिनो तक चला।

चौदहवें दिन स्वय रावण राम से लडने के लिए युद्धभूमि

पर उतरा। उसके साथ बडे-बडे वीर सैनिक थे।

उसने दहाड कर कहा, "या तो आज मैं राम को मार डालूंगा अथवा राम मुझे मार डालेगा। आज निर्णायक युद्ध होगा। तुम सब आज मेरे साथ अंतिम युद्ध करने के लिए चलो।"

उस दिन दोनो ओर से भयकर से भयकरतम आयुधो का प्रयोग हुआ। ये शस्त्र विनाश के प्रतीक थे।

उधर रावण अपने शस्त्रो का प्रयोग कर रहा था और इधर राम।

रोमाचक युद्ध था वह।

अत मे राम और रावण आमने-सामने आ गये। दोनो दिव्यास्त्रो की बौछार कर रहे थे। एक बार तो रावण ने राम के विश्वास को हिला दिया।

राम कांप उठा पर उसने सँभलकर देवाधिदेव इन्द्र की शक्ति का उपयोग किया। राम-रावण युद्ध पूरे चौबीस घंटे चला। राम मन-ही-मन रावण की महाशक्ति और उसके आयुधो के प्रभाव को मान गया।

अब रावण के वध करने का एक ही उपाय बच गया था। उन्होने भगवान अगस्त्य मुनि के दिए हुए ब्रह्मास्त्र को छोड दिया।

रावण ने अपने आयुधो से रोकने की बडी चेष्टा की पर वह असफल रहा। उस ब्रह्मास्त्र ने रावण के हृदय को विदीर्ण करके रख दिया।

रावण की मृत्यु से समस्त देवता प्रसन्न हो गये। पर विभीषण भी शकाकुल होकर बिलखने लगा। तब स्वय राम ने रावण की प्रशसा की और कहा, "वह परमज्ञानी, तपस्वी, महात्मा और वीर पुरुष था, उसने एक सम्मानजनक मृत्यु को वरण किया इसलिए वह प्रशसा के योग्य है।"

राम ने सुग्रीव, अंगद नल हनुमान आदि का आभार माना।

जैसे ही वे इन औपचारिकताओं से मुक्त हुए राम को सीता की याद सताने लगी। वे उद्विग्न और अधीर हो उठे।

तुरन्त हनुमान को सीता के पास भेजा गया। सीता ने हनुमान को देखा तो भाव-विह्वल होकर बोली, "कपिवर! क्या सवाद लाये हो?"

"मातेश्वरी! राम विजयी हो गए हैं और रावण अपने परिवार के साथ मारा गया है।"

'कपिवर! तुमने यह सवाद सुनाकर मुझे तार दिया। मैं तुम्हें इस शुभ सवाद का क्या उपहार दूँ?"

सेवक को उपहार देने की कोई आवश्यकता नही। स्वामिया की सेवा करना सेवक का धर्म होता है। उनकी प्रशसा ही उनका पुरस्कार है।"

हनुमान जी ने चारो ओर देखा। भयभीत राक्षसी पहरेदारिनें खडी थी। उनकी ओर रोष भरी दृष्टि से देखकर हनुमान ने कहा 'इन दुष्टाओ ने आपको बडा कष्ट दिया है। मैं इन्हें मार डालना चाहता हूँ।'

सीता ने हनुमान को रोकते हुए कहा, 'ये दासियाँ हैं, पराधीन हैं स्वामी की आज्ञा मानना इनका धर्म है। ये क्षमा के योग्य हैं।"

हनुमान ने सीता की आज्ञानुसार सबको क्षमा कर दिया।

थोडी देर बाद राम और सीता का मिलन हो गया।

सीता, 'आर्यपुत्र आर्यपुत्र' कहकर राम के गले लग गयी और रोती रही।

राम ने सीता को अस्वीकार कर दिया क्योंकि उसे भय था कि पराये घर रहकर सीता पवित्र है या नही? यह विवादा

स्पद सदेह मारी प्रजा को सालता रहेगा। इसलिए तुम्हें परीक्षा देनी होगी।"

सीता को राम मे यह आशा न थी। उमको लगा कि राम अपना सारा विवेक और शिष्टना भूल गए हैं। यह सर्वशक्तिमान और भगवान की गरिमा लिए हुए उसके पति राम क्या इतने सकीर्ण हैं ? अपना सती पत्नी पर भी सदेह करते हैं। उसके नारीत्व व सतीत्व की परीक्षा लेना चाहते हैं।

उसने तडपकर कहा, "आर्यपुत्र ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ। मेरे शील और सदाचार के प्रमाण का कोई मूल्य आपके सामने नही है अच्छा कोई बात नही, मैं अग्नि मे प्रवेश करके अपनी सत्यता का प्रमाण दूगी।"

सीता ने अग्नि मे प्रवेश कर लिया ! अग्नि सती सीता को जला नही सकी ! सीता की पवित्रता की परीक्षा हो गयी।

राम ने आसू बहाकर कहा, "यदि मैं यह परीक्षा नही लेता तो हम सबकी बडी लोकनिंदा होती "

सीता ने नाराजगी से कहा, "पुरुष सदा स्त्री की ही परीक्षा क्यो लेता है ? वह स्वय परीक्षा क्यो नही देता ?"

"समाज-व्यवस्था के अनुसार मुझे ऐसा करना पडा। सीते ! मैं क्षमा चाहता हूँ।"

और राम-सीता का मिलन हो गया।

वनवास की अवधि पूरी हो गयी थी। राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या लौट आए। भरत ने उ ह उनकी पादुका पहनायी जिन्हें नमन करके भरत ने चौदह वर्ष अयोध्या का प्रशासन चलाया था।

राम का बडी घूमधाम से अभिषेक हो गया ... सहृदय और जन-प्रतिनिधि उपस्थित थे। राम ने ... जन-कल्याण के काय किए। उनका राज्य रामराज्य ...

उनके राज्य मे हर प्रकार की सुख-शाति, सतोष, समृद्धि और समता व्याप्त हो गयी।

पर नारी-जीवन तो विडम्बनाओ व दुखो का पर्याय है।

राम के सिंहासन पर बैठने के चद दिनो बाद सीता पर एक सकट और मँडराया।

एक दिन राम रात्रि के समय नगर-परिक्रमा कर रहे थे तो उन्होने एक पुरुष-स्वर सुना—"कुलटा, निकल जा यहाँ से, मैं राम जैसा स्त्री-कामी नही हूँ जो पराये घर पर रहने वाली को अपनी घर मे रख लूँ।"

राम को इससे आघात लगा पर उन्होने यह बात सीता को नही बतायी। फिर गुप्तचर छोडे। उन्होने भी यह कहा कि सीता को रखने के कारण लोग तरह-तरह से रघुकुल के सम्मान को घटाने वाली बातें करते रहते है।

राम इस लोकापवाद से भयभीत हो गए। यह जानते हुए कि सीता निर्दोष है। उन्होने अपने विश्वासपात्र जनो व लक्ष्मण को सीता को वाल्मीकि के आश्रम मे छोड आने के आदेश दे दिए।

तमसा नदी पार करके जब लक्ष्मण सीता को लेकर पहुँचे तब वे रोने लगे।

सीता ने कारण पूछा, तो लक्ष्मण ने सच सच कह दिया कि "भैया राम ने आदेश दिया है कि मैं आपको महर्षि वाल्मीकि के आश्रम मे छोड आऊँ।"

सीता को गुस्सा और पीडा दोनो हुई। उसने एक पत्नी के रूप मे सोचा कि क्या सचमुच उसके पति राम की बुद्धि खराब हो गयी है?

वे बोली, 'क्या आपके भैया राम इतने दुर्बल हैं? महा-

शक्तिशाली, मेधावी, धैर्यवान राम क्या लोकापवाद को भी ठीक नही कर सकते या मैं नारी हूँ, इसलिए बार-बार मुझे प्रताडित किया जाता है।"

लक्ष्मण ने अपराधी की तरह सिर झुकाकर कहा, "माता! मैं इसका तर्कपूर्ण उत्तर देने मे असमर्थ हूँ। मैं तो भैया का केवल आदेश पालन कर सकता हूँ। मैं पराधीन हूँ।"

सीता ने लक्ष्मण से कहा, "यह कदाचित मेरे पूर्व जन्मो के पापो का फल है। मेरा यथायोग्य सबको प्रणाम कह देना।"

लक्ष्मण स्वय रोता हुआ महासती सीता को रोते हुए छोड कर चला गया।

कालान्तर मे सीता ने एक साथ दो बच्चो को जन्म दिया। उनके नाम लव-कुश थे। महर्षि वाल्मीकि ने उनके नाम-सस्कार किए। बच्चे धीरे धीरे बडे होने लगे। सीता का जीवन उन दोनो बालको के कारण बडा ही सरस हो गया। दोनो अपने को ऋषि सतान मानते थे।

उधर राम भी सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर धर्म के कार्यो की पूर्ति करते थे।

राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। राम के यज्ञ का घोडा लव-कुश ने पकड लिया और उन्होने राम की सेना को भी हरा दिया।

तब राम स्वय वहाँ गए। उन्होने दोनो बालको का परिचय पूछा तो दोनो ने सारी कथा बता दी। राम ने उन्हे अपने बेटे जानकर गले से लगा लिया और रो पडे।

उन्होने सीता से क्षमा माँगी और अयोध्या चलने के लिए कहा। महर्षि वाल्मीकि ने राम से कहा, "आप एक वृहत सभा का आयोजन करें और सीता को निर्दोष घोषित करके उसे

ग्रहण करें।

राम ने वाल्मीकि की शर्त मान ली। उन्होने अयोध्या मे सभा का आयोजन किया तब वाल्मीकि ने सवसाधारण की व प्रतिष्ठित लोगो की विराट सभा मे कहा— 'सीता पतिव्रता, सदाचारिणी और धमनिष्ठ है। यदि इसमे जरा भी असत्य हो तो मेरी वर्षों की तपस्या का फल मुझे न मिले ! मैं सवप्रिय राम से प्राथना करता हूँ कि वह सीता को ग्रहण करें और स्वीकार !"

न जाने क्यो राम ने कहा, 'मुनिश्रेष्ठ ! इस सम्बध मे समाज का निणय मुझे मान्य होगा। स्वय सीता आज स्पष्टीकरण देकर प्रजा का विश्वास प्राप्त करे।"

सीता का धैर्य टूट गया। पति द्वारा अब भी हिचकिचाहट ने उसे पीड़ा के सागर मे डुबा दिया। लज्जा, ग्लानि और पीड़ा से आहत होकर सीता ने चीखकर कहा "मा धरती ! यदि मैंने कल्पना मे भी पर पुरुष का ध्यान नही किया है तो तू मुझे अपनी गोद मे ले ले। मैं ऐसे समाज और पति के साथ रहना ही नही चाहती।"

उसी क्षण धरती फट गयी। व्यथित सीता देखते-देखते धरती मे समा गयी। भूमिजा पुन भूमि मे लीन हो गयी।

सब लोग बिलख उठे। राम भी सीता के लिए जीवन पयन्त रोते रहे।

तारामती

त्रेतायुग मे हरिश्चन्द्र नामक एक राजा था। वह राजा धर्मात्मा, दानी, वीर और धीर प्रकृति का था। उसकी यश की पताका चारों ओर फैली हुई थी। उस राजा की ऐसी सुन्दर राज्य-व्यवस्था थी कि उसके राज्य मे न कभी अकाल पडता था और न कभी महामारी होती थी। हरिश्चन्द्र के राज्य मे सारी प्रजा सुखी और सन्तुष्ट थी।

राजा हरिश्चन्द्र के तारामती नाम की रानी थी। तारामती पति की तरह धर्मपरायण और त्यागी थी। वह हर सुबह भगवान सूर्य का दर्शन करके दान करती थी। उसके दरवाजे से कोई भी व्यक्ति निराश लौटकर नही जाता था।

रानी अपने पति की हर आज्ञा पर अपना सर्वस्व-त्याग कर देती थी।

रानी तारामती के एक पुत्र था। उसका नाम रोहिताश्व था। रोहित भी अपने पिता की तरह दयालु और सुन्दर था।

एक दिन की बात है।

रानी तारामती, हरिश्चन्द्र और रोहित महल मे बैठे थे। रोहित खेल रहा था। तारामती और हरिश्चन्द्र इधर-उधर की चर्चाएँ कर रहे थे। तभी रानी तारामती ने कहा, "महाराज!

स्त्री का धर्म क्या है ?"

राजा हरिश्चन्द्र ने कहा, "रानी ! स्त्री का धर्म बड़ा विराट होता है। वह गृहस्थी की नैया होती है। उसका परिवार उसका धर्म होता है। वह पति की अर्द्धांगिनी होती है और उसके सुख-दुख की सहभागिनी भी होती है।"

तारामती ने कहा, "मनुष्य भाग्य के हाथ का खिलौना है।"

"भाग्य और विधि का विधान सर्वोपरि होता है। वह न जाने क्या-क्या खेल दिखाता है।" राजा हरिश्चन्द्र ने कहा, "उन अच्छे-बुरे दिनों में स्त्री पति का साहस होती है।"

तारामती अपने पति को परमात्मा समझती थी।

उसने यकायक पूछा, "महाराज ! मैंने सुना है कि आप कल शिकार खेलने जायेंगे।"

"हाँ रानी ! राजा का यह भी एक धर्म है। शिकार के बहाने वनों का निरीक्षण करना। किसी नरभक्षी को खत्म करना, तपस्वियों के संकट को दूर करना। महारानी ! एक राजा को अनेक कर्त्तव्य साथ-साथ निभाने पड़ते हैं।"

तारामती ने मुस्करा कर कहा, "महाराज ! जिस तरह एक राजा अपने कर्त्तव्य को निभाता है, उसी तरह एक रानी को भी अपने कर्त्तव्यों का पालन करना होता है।"

फिर तारामती और हरिश्चन्द्र चौपड़ खेलने लगे।

बड़ी रात तक वे चौपड़ खेलते रहे।

रोहित खेलते-खेलते सो गया था। उसे एक दासी उठाकर ले गयी।

जब चन्द्रमा आकाश में बीचोंबीच आ गया तब रानी ने राजा से सोने की आज्ञा चाही। राजा ने मुस्करा कर स्वीकृति दे दी थी।

दूसरे दिन राजा हरिश्चन्द्र शिकार खेलने के लिए जाने लगे। तारामती उन्हें विदा करने आयी। राजा ने तारा से कहा, "रानी! रोहित का ध्यान रखना।"

"आप कोई चिंता न करें!"

राजा शिकार को चला गया।

न जाने क्यों रानी तारामती उनके जाने पर उदास हो गयी।

राजा एक बाघ का पीछा करते हुए घोर वन में पहुँच गया।

उसे एक स्त्री का स्वर सुनायी पड़ा, "रक्षा करो रक्षा करो।"

राजा सहसा क्रोध में भर गया। उसने अपने आप से कहा, 'कौन दुष्ट है जो मेरे राज्य में स्त्रियों को सताता है?'

थोड़ा देर बाद राजा को मालूम हुआ कि महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या करके उन विद्याओं को सीख रहे हैं जो स्वयं भगवान शिव को प्राप्त हैं। इसलिए सारी विद्याएं रो रही हैं।

राजा ने विश्वामित्र के पास जाकर प्रणाम करके कहा, "आप कौन हैं? यदि आपने स्त्रियों को सताया तो मैं अपने बाणों से आपका विनाश कर दूंगा।"

महर्षि विश्वामित्र राजा की बात सुनकर क्रोध में भर आये। क्रोध में आते ही उनकी साधना भंग हो गयी और रोती हुई विद्याएँ लुप्त हो गयीं।

विश्वामित्र ने कठोर स्वर में कहा, "दुष्ट राजा, मुझे जानता है। मैं विश्वामित्र हूं! मैं अपने तपोबल से तुम्हें भस्म कर दूंगा।"

"महामुनि! रक्षा करना मेरा धर्म है। मैंने अपने धर्म का पालन किया है। मुझ पर क्रोध करना व्यर्थ है। धर्म का पालन

करने वाले राजा का कर्त्तव्य है कि वह दान दे, रक्षा करे और युद्ध करे।"

विश्वामित्र ने क्रोध-भरे स्वर मे कहा, "जो ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ है और दीन है उसे ही राजा दान करे। फिर तू मुझे इच्छा के अनुसार दान दे, क्योकि मैं विवाह करना चाहता हूँ।"

"आप अपनी मनपसद वस्तु का दान ले सकते हैं। मैं आपको आपकी इच्छानुसार दान दूगा।"

विश्वामित्र तो राजा को सकट मे डाल देना चाहते थे। वे बोले, "मुझे तुम्हारा राज्य, वैभव और खजाना सब कुछ चाहिए।'

राजा हरिश्चन्द्र जरा भी नही घबराया। उसने विनती से सिर झुकाकर कहा, 'आपने जो जो मांगा है, उसे मैं दान देता हूँ।"

विश्वामित्र प्रसन्न हो गया।

उसने कहा, "दान तो मैंने ले लिया पर दान के बाद जो दक्षिणा दी जाती है, वह भी मुझे चाहिए।"

"मुनिवर! मैं आपको दक्षिणा भी दूंगा पर अभी नही। अभी मैंने अपने पुत्र व पत्नी के अलावा अपना सब कुछ आपको दान दे दिया है। अब जैसे ही कोई व्यवस्था होगी, वसे ही आपकी दक्षिणा भी दे दूगा।"

राजा दुखी मन लौट आया।

अपनी दीनता, व्याकुलता और चिता को वह लाख चाहकर भी नही छुपा सका।

रानी तारामती ने राजा के भीतर की उथल-पुथल को पहचान लिया। वह पास आकर बोली 'महाराज! क्या बात है?"

राजा ने तारामती का हाथ लेकर कहा, "रानी! पत्नी अर्धांगिनी होती है। उसका पति की हर चल-अचल सम्पत्ति मे

आधा हिस्सा होता है पर मैंने तुम्हे बिना पूछे ही अपना सारा राज्य, वैभव और खज़ाना विश्वामित्र को दान दे दिया । अब मैं एकदम निर्धन हो गया हूँ । तब महर्षि ने मुझसे दक्षिणा और माँग ली है तथा मैंने उन्हें देने की प्रतिज्ञा कर ली है ।"

तारामती अत्यन्त बुद्धिमान, धीर-गम्भीर नारी थी । उसनें कहा, "महाराज ! मैं आपकी पत्नी हूँ । मैंने मन-वचन कर्म से अपने पतिव्रत धर्म का पालन किया है ! आप चिंता को छोडिए और सत्य के पालन के लिए तैयार हो जाइए ।"

"पर कैसे ?"

तारामती ने साहस के साथ कहा, "महाराज ! पतिव्रता स्त्री का धर्म है कि वह अपना रोम-रोम बेचकर भी अपने पति के धर्म का पालन करे । मैं यही करूँगी । मैंने नारी जीवन का परम पद प्राप्त कर लिया है यानी मैं माँ बन गयी हूँ । मेरे एक पुत्र भी है । सत्यवादी पुरुषों की स्त्रियाँ पुत्र उत्पन्न करके जीवन को सार्थक बना लेती हैं ।"

'मैं तुम्हारा मतलब नही समझा !"

रानी तारामती की आँखे भर आयी । मोतियो के समान चद आँसू टप टप गिर पडे ।

वह भरे स्वर मे बोली, "स्वामी ! आप मुझे बेचकर अपने सत्य की रक्षा कीजिए ।"

"रानी !" राजा के मुँह से एक चीख-सी निकल गयी ।

"हाँ महाराज, मैं आपको अपने वचनो से किसी भी कीमत पर गिरने नही दूगी ।"

"राजा को मूर्छा-सी आ गयी । उसने साफ मना करते हुए कहा, "नही, ऐसा नही हो सकता । ऐसा करके मैं महापापी हो जाऊँगा ।"

तारामती ने राजा के सिर पर हाथ फेरा और दुखी होकर

बोली, "मेरे प्रभु ! आप इतने विचलित और अधीर मत होइए। अब इस समस्या के तुरन्त समाधान के लिए हमारे पास एक ही उपाय है।"

महल की एक-एक चीज दान हो चुकी थी। उसी समय रोहिताश्व ने माँ का आँचल पकड़ कर कहा, "माँ ! मुझे भूख लगी है।"

"बेटा ! इस महल की हर चीज पर महर्षि विश्वामित्र का अधिकार है। मैं, तुम्हारी माँ, अभी तुम्हें रोटी भी नहीं खिला सकती ?"

अभी राजा-रानी बातचीत कर ही रहे थे कि महर्षि विश्वामित्र आ गये।

उन्होंने बिना किसी भूमिका आदि के स्पष्ट शब्दों में कहा, "राजन् ! मेरी दक्षिणा के रुपये दीजिए। अपने दिए गये वचनों का पालन करके सत्य की रक्षा करें, क्योंकि सत्य ही सर्वोपरि धर्म है।"

राजा हरिश्चन्द्र से कुछ बोला नहीं गया पर तारामती ने कहा, 'ऋषिवर ! आपकी दक्षिणा की व्यवस्था हो जाएगी।"

"यदि सूर्य के डूबने तक व्यवस्था नहीं हुई तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा।"

"आप चिंता न करें महर्षि ! हम अपना सर्वस्व बेचकर भी आपकी दक्षिणा की व्यवस्था करेंगे, वह भी सूर्यास्त होने के पहले।"

विश्वामित्र जी चले गये।

फिर वही एकान्त !

रोहिताश्व ने अपनी माँ का आँचल पकड़ कर कहा, "माँ ! मुझे अब भूख नहीं है। मेरा पेट तो बस यूँ ही भर गया।"

तारामती का हृदय ममता से भर आया। उसने उसे सोने

से चिपकाकर कहा, "मेरे लाडले तू भी अपने माँ बाप के सकट को समझता है।" वह फिर रो पडी।

रोहित ने कहा, "माँ! आप मुझे बेचकर इस ऋषि की दक्षिणा चुका दीजिए।"

एक बार राजा के नयन फिर भर आये।

तारामती ने राजा का हाथ पकडकर कहा, "महाराज, आप मेरी बात मान लीजिए। मुझे बेच कर आप विश्वामित्र जी की दक्षिणा दे दीजिए। इसी में ही हमारे कुल की भलाई है।"

"रानी! जो काम क्रूर से क्रूर मनुष्य भी नही कर सकता, उसे मैं करने जा रहा हूँ। मुझे ईश्वर कभी क्षमा नही करेगा।"

"महाराज!" तारामती ने कहा, "पति परमेश्वर होता है। यदि पति के लिए पत्नी कुछ भी उचित-अनुचित कर दे, वह भी धर्मसगत होता है।"

"महाराज आप मुझे बेचकर अपने धर्म का पालन कीजिए।"

कोई उपाय न देखकर अत मे राजा हरिश्चन्द्र नगर में हाट की ओर चला।

थोडी देर मे वह नगर के सबसे बडे हाट मे पहुँचा जहाँ विभिन्न चीजो की बोलियाँ लगायी जा रही थी।

राजा ने खडे होकर कहा, "सुनो-सुनो व्यापारियो सुनो। मैं नीच प्राणी अपने धर्म का पालन करने के लिए अपनी पत्नी को बेचने आया हूँ। किसी को दासी की जरूरत हो तो मेरी पत्नी को दासी बनाकर ले जा सकता है।" राजा रो पडा।

तारामती की आँखें भी भर आयी।

रोहित की छोटी छोटी आखो मे भी छोटे छोटे आँसू टपक पडे।

बार-बार आवाज लगाने के बाद, एक वृद्ध ब्राह्मण उसके

पास आया। बोला, 'मुझे एक दासी की जरूरत है। मैं तुम्हारी पत्नी को खरीदना चाहता हूँ। मैं धनवान हूँ और मेरी पत्नी बहुत ही कमजोर है। उससे घर का काम-काज नहीं होता।"

राजा ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसने तारामती के रुपये लेकर ब्राह्मण को सौंप दिया। ब्राह्मण उसका हाथ पकडकर खीचने लगा तो रोहिताश्व ने माँ का आंचल पकड लिया।

तारामती का हृदय विदीर्ण हो गया।

उसने रोहिताश्व को अपनी छाती से लगा लिया। ब्राह्मण जल्दबाजी कर रहा था पर तारा को उसका बेटा छोड ही नहीं रहा था।

ब्राह्मण का हृदय भी पसीज गया।

तभी तारामती ने कहा "हे तात ! कृपा करके आप मेरे बेटे को भी खरीद लीजिए, इससे आप माँ-बेटे को अकल करने के पाप से बच जायेंगे। आपको पुण्य भी होगा।"

ब्राह्मण को दया आ गयी। उसने कुछ रुपये देकर रोहिताश्व को भी खरीद लिया।

राजा हरिश्चन्द्र रोता रहा। उधर तारामती और रोहित भी बिलख बिलख कर रो रहे थे।

उसी समय विश्वामित्र आ गए। उन्होंने तुरन्त कहा, "राजन, सूर्य शीघ्र ही अस्त हो जाएगा। मुझे मेरी दक्षिणा दीजिए।"

पत्नी और पुत्र को बेचकर जो धन राजा ने इकट्ठा किया था, उसे विश्वामित्र को दे दिया। विश्वामित्र इतने थोडे सिक्के देखकर जलभुन गये। बोले, "ओ नीच राजा क्या मेरी दक्षिणा इतनी तुच्छ है ! लग रहा है कि तुम्हे मेरी क्रोध की अग्नि का शिकार होना ही है।"

"नही मुनिवर, अभी तो मेरी पत्नी व पुत्र ही बिके है। अब मुझे विकना है।"

राजा ने अपने आपको नीलाम करने के लिए आवाज लगायी।

एक चाण्डाल आया। वह बहुत ही घिनौना और विरूप था। उसने राजा को खरीदना चाहा। राजा ने उसे कहा, "मैं तुम्हारी नौकरी नही करूँगा। तेरा काम बहुत घृणित है।"

"मैं तुम्हे मुँह-माँगे रुपये दूँगा।"

उसी समय विश्वामित्र आ गये। राजा ने तुरन्त उस चाण्डाल को कहा, "लो, मुझे खरीद लो।"

चाण्डाल ने राजा को खरीद लिया। राजा ने अपने वचनो का पालन करने के लिए सारा धन विश्वामित्र को दे दिया।

विश्वामित्र उसे आशीर्वाद देकर चले गये।

राजा एकान्त मे विलाप करने लगा। उसे बार-बार अपनी पत्नी और पुत्र याद आ रहे थे और उसका कलेजा फटा जा रहा था।

उधर ब्राह्मण तारामती और रोहित को लेकर अपने घर आया।

उसकी पत्नी दासी को देखकर खुशी के मारे उछल पड़ी।

धनी ब्राह्मण ने कहा, "देखो कल्याणी! मैं तेरे लिए कितनी सुन्दर दासी लाया हूँ। साथ मे छोटा-मोटा काम करने के लिए यह बच्चा भी! कितना आनन्द रहेगा जीवन मे?"

कल्याणी ने अपने पति की ओर देखकर कहा, "आज आपने मेरे मन की इच्छा पूरी की है। अब मैं चैन से रहूँगी वर्ना घर का काम-काज करते करते तो मैं मर जाती थी।"

ब्राह्मण की बहुत सुन्दर हवेली थी। बहुत बडी नही पर छोटे

परिवार के लिए अत्यन्त ही उपयोगी। बस, उस घर मे कमी थी तो केवल दास दासियो की।

कल्याणी ने तारामती की ओर देखकर कहा, "क्या नाम है तेरा?"

"मेरा नाम तारामती है।"

"दासी का क्या इतना बडा नाम होता है, यह तो रानियो जैसा नाम है।"

रोहित तडाक से बोला, "मेरी माँ सचमुच रानी है।"

"चुप रोहित।" रानी ने टोका।

"रानी जरूर है पर दासियो की। ऐ महारानी तारामती! कान खोलकर सुन ले, मैं तुझे तारा कहूगा। तारामती कहते कहते तो मेरी जीभ ही घिस जाएगी।" उसका स्वर बडा ही कठोर था। वह कडवे स्वर मे फिर बोली, "मेरी पुकार पर तुरन्त आ जाना।'

ब्राह्मण ने कहा, "कल्याणी! यह कितनी सुन्दर है।"

"ओह!" कल्याणी ने तेवर बदलते हुए कहा, 'तुम इस लिए इसे लाये हो? सुन लेना—कभी ऐसी वैसी बात की तो मैं तुम्हारा मुँह नोच लूगी। मैं अरी ओ तारा जरा सुन तो?'

तारामती आयी।

'तू कान खोल कर सुन लेना यहाँ अधिक सज-सँवर कर मत रहना। ये पुरुष बडे ही पापी और चरित्रहीन होते हैं।"

तारामती ने कहा, "स्वामिनी! जो अपने पति के धर्म और सत्य की रक्षा के लिए अपने को दासी बना सकती है, वह स्त्री अब किसके लिए सजे-सँवरेगी? स्वामिनी! आप किसी बात की चिंता न कीजिए।"

कल्याणी ने हवा मे हाथ मारते हुए कहा, 'मैं चिंता विंता

करनेवाली नहीं हूँ। यदि मुझे जरा भी सन्देह हुआ तो मैं तेरे सुन्दर मुखड़े पर डाभ चिपवा दूँगी। तूने मेरा गुस्सा नहीं देखा है। सुन जल्दी से जाकर खाना बना ले।"

तारामती चलने लगी कि उसे रोकते हुए कल्याणी ने कहा, "अरे गयी क्या खाना बनाएगी यह तो पहले पूछ।"

तारामती सिर झुका कर खड़ी हो गयी।

"जा हलवा-पूड़ी बना ले। अजी स्वामी जी, आप सुनते हैं—हलवा-पूड़ी। आज तो मैं अच्छी तरह अपना पेट भरूँगी। और तेरे इस चमगादड़ को कह दे कि वह हवेली के पीछे जो बगीचा है उसमें झाड़ू लगा दे।"

"स्वामिनी!" तारामती ने हाथ जोड़ कर कहा, "मैं सारे काम कर लूँगी। अभी तो रोहित बड़ा ही नादान है।

कल्याणी एकदम भड़क उठी। उसने लपक कर तारामती के बाल पकड़ लिए और उन्हें खींचते हुए कहा, "निखट्टू! जबान लड़ाती है। जैसा कहूँ वैसा ही कर। तेरे बेटे के भी कलदार दिए हैं।"

रोहित ने कहा 'मेरी माँ के बालों को छोड़ दीजिए—मैं सब काम कर लूँगा।"

कल्याणी ने रोहित की ओर आग भरी दृष्टि डालकर कहा, "जैसा मैं कहूँ वैसा करना वर्ना दोनों की चमड़ी उधेड़ दूँगी।"

तारामती ने आँसू पोंछते हुए कहा, 'ठीक है।"

राजा हरिश्चन्द्र काशी के गंगा-तट पर बने श्मशान पर पहरा लगाता था। भाग्य ने उसे भी कम से राजा से चाण्डाल बना दिया था।

चाण्डाल ने उसे मुर्दा जलाने का तरीका बता दिया था।

राजा रात-दिन मुर्दे की प्रतीक्षा करता रहता था। बिना

कफन व दस्तूरी लिए वह किसी को भी शव फूकने नही देता था।

नियमानुसार जो पैसा मिलता था, उसका छह भाग राजा को, तीन भाग चाण्डाल को और एक भाग हरिश्चन्द्र का वेतन।

राजा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहता था। फिर भी वह रात दिन अपनी पत्नी तारामती और पुत्र रोहित के लिए तरसता रहता था।

वह सोचता था कि जो तारामती फूलो के रास्तो पर चलती थी, मखमली शय्या पर सोती थी, जिसके एक सकेत पर दस दस दासिया उपस्थित हो जाती थी, वह आज स्वय दासी का काम कर रही है। जरूर उसके हाथो मे बडे-बडे छाले हो गए होगे। जरूर उसका कठोरहृदय स्वामी उसे तरह-तरह से प्रताडित करता होगा। और मेरा रोहित हे प्रभु उस कोमल बालक पर न जाने कौन-कौन से अत्याचार होते होगे।

तभी एक शव आ गया।

शव किसी गरीब आदमी का था। शायद वह युवा था इस लिए सारे लोग जोर जोर से करुण क्रदन कर रहे थे।

उसके पीछे पीछे पागल सी उस मृतक की पत्नी आ रही थी। वह सिर पीट पीटकर रो रही थी।

शव श्मशान के पास पहुँचा।

चाण्डाल बने राजा ने कहा, "कौन मरा है भाई? किस जाति का है?

एक व्यक्ति ने कहा, "यह इस दुखियारी का पति है? यह एक साधारण बुनकर है इसलिए कफन तो हम ले आये?"

"और दस्तूरी के पैसे?" राजा ने पूछा।

"वह तो इस गरीब के पास नही है।'

चाण्डाल बने राजा हरिश्चन्द्र ने कहा, भाई! मैं ठहरा

एक दास। मैं अपने स्वामी के प्रति विश्वासघात कभी नही कर सकता। शास्त्रो ने कहा है—जो सेवक अपने स्वामो के प्रति छल-कपट करता है वह भयकर नरक को पाता है।"

"पर यह बेचारी दस्तूरी लायेगी कहाँ से? अत्यन्त दरिद्र और अभावग्रस्त है।"

"यह सही है पर मैं किसी भी मूल्य पर अपने स्वामी के साथ विश्वासघात नही कर सकता।"

उस मृतक को स्त्री उसके पास आयी। वह आकर बोली, "तुम मनुष्य नही राक्षस हो क्योकि राक्षस ही इतना निष्ठुर हो सकता है।"

"तुम मुझे कुछ भी कहो पर मैं यह नही होने दूगा। बिना दस्तूरी लिए मैं इस शव को नहीं जलाने दूँगा।"

"ओह! निष्ठुर यदि कोई तेरा सगा भी इस मरघट पर आयेगा तो, क्या तू उसके साथ भी इतना कठोर व्यवहार करेगा?"

"हाँ, जो सेवक अपने धम को त्यागता है, वह जोवन भर कष्ट पाता है।"

राजा हरिश्चन्द्र नही माना।

वे लोग गगा के पास गए और शव का जलदाह कर दिया।

पर न जाने क्यो राजा हरिश्चन्द्र शकाओ से घिर गया।

उसकी तारामती और उसका बेटा रोहित अभी क्या कर रहे हैं, वह सोचने लगा।

तारामती काम करके थक गई थी। उसका रगरूप और स्वास्थ्य बिगड गया था।

कल्याणी के कठोर व्यवहार से उसकी पहचान तक मिट गयी थी।

सुबह से लेकर शाम तक वह कोल्हू के बैल की तरह उस ब्राह्मण के घर पर काम करती थी। इस पर उसे और उसके लाडले बेटे को अपशब्द सुनने पड़ते थे।

तारामती भी राजा की स्मृति में खोयी हुई जीवन के एक-एक पल को बोझ की तरह जी रही थी।

अभी वह बरतन मल कर आयी थी कि कल्याणी ने कहा, "ओ महारानी! जरा इधर आ तो।"

'क्या बात है स्वामिनी?"

"देख तू तो मेरे साथ बाहर चल, मुझे हाट से सामान लाना है। और अपने इस राजकुमार को कह दे कि जो बगीचे के पास गुभार (तहखाना) है, उसे साफ कर ले।"

तारामती ने कल्याणी की ओर देखकर कहा "स्वामिनी! बच्चा आज सुबह से काम कर रहा है, बहुत ही थक गया है। फिर सूर्य ढल रहा है इसलिए गुभार में अँधेरा सा होने लगता है। कहीं किसी साँप बिच्छू ने डस लिया तो?"

"तो कौन सी प्रलय हो जायगी। अरे निठल्लो! दो दो सेर धान खाते हो और काम के नाम पर भाँति-भाँति के बहाने करते हो? बेटे से इतना ही प्यार था तो क्यों पैसे लिए। क्यों बेचा इसके निर्दयी बाप ने? अरे ओ राजकुमार।"

रोहित भागता हुआ आया।

वह आकर बोला, "क्या है?"

'सुन! हम लोग घाट जा रहे हैं। तुम गुभार साफ कर लेना। यदि यह काम नहीं किया तो तेरा और तेरी माँ का भोजन बन्द।"

रोहित उँगली हिलाकर बोला, "नहीं आप मेरा भोजन बन्द कर दीजिए पर मेरी माँ का नहीं। मेरी माँ बहुत ही दुर्बल हो गयी है। इसका भोजन बन्द मत कीजिए।"

"फिर गुभार साफ करके रखना।"

"कर दूँगा।"

"देखा, कितना अच्छा है तेरा बेटा।" उस कठोरहृदया कल्याणी ने कहा, "बेटा हो तो ऐसा, अभी से ही माँ का कितना ध्यान रख रहा है ?"

तारामती ने हाथ जोडकर कहा, "स्वामिनी ! इस पर दया कीजिए। हम दोनो मिलकर कल आपका यह गुभार साफ कर देंगे।"

तभी ब्राह्मण आ गया।

उसने उसे अनुनय विनय करते देखकर कहा, "क्या बात है तारा ?"

तारा ने बात बताकर कहा, "आप इन्हे समझाइए।"

कल्याणी भडक उठी। बोली, "यह मरा बूढा मुझे क्या समझायेगा ? मैं जानती हूँ कि इसकी नीयत तेरे लिए खोटी है और तू भी अपने पति द्वारा बेची जाकर तरह-तरह के नाटक करती रहती है।"

ब्राह्मण तो शिव-शिव कह कर वहाँ से खिसक गया।

कल्याणी ने तारामती को एक चाँटा मारकर कहा, "अपने इस कामचोर लाडले को समझा दे,वर्ना मैं एक दाना भी खाने को नही दूँगी।"

रोहित ने कहा, "आप चिंता न करें। मैं गुभार साफ करके रख दूँगा।"

वे दोनो चली गयी।

बाजार मे तारामती प्यासी निगाहो से सुदर सुदर वस्तुओ को देखती रही। कभी इतनी अमूल्य चीजें वह अपने दास-दासियो को दे देती थी, उन्ही चीजो के लिए वह आज स्वयं तरस रही है ? वाह रे भाग्य के खेल ! पल मे राजा को रक

और रक को राजा बना देता है।

वाह रे सत्य! तेरी रक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाले क्या इस तरह विपत्ति में जीयेंगे और कष्ट भोगेंगे? कौन तुम्हारे लिए त्याग-दान देगा? लोग सत्य बोलना ही छोड देंगे? सत्य के नाम से लोगो को चिढ हो जायेगी।

इस तरह वह विचारो में खोयी थी कि उसे ठोकर लग गयी। ठोकर लगते ही वह गिर पडी और उसके हाथ से शीशे का सुन्दर खिलोना टूट गया।

कल्याणी ने घूम कर देखा तो उसका खून खौल उठा। तारामती के कहाँ चोट आई है, इसकी चिंता किए बिना उसने उसे भद्दी-भद्दी गालियाँ निकाल कर लातो से मारना शुरू कर दिया।

वह कराहती रही।

लोगो ने बीच-बचाव किया। उसी समय ब्राह्मण भागता हुआ आया और उसने घबरा कर कहा, "जल्दी चलो, रोहित को साँप ने काट लिया है।"

"क्या?" तारामती अपनी पीडा को भूल कर रोहित-रोहित करके भागी।

उसके पीछे ब्राह्मण भागा। कल्याणी अपने सामान को सभालती हुई बडबडा रही थी, "हाय मेरा काँच का मोर टूट गया कितना सुन्दर बना हुआ था। हाय मेरी माला के मोती बिखर गए साँप ने बच्चे को काट लिया तो मर थोडे ही जायेगा।"

जब तारामती घर पहुँची तब रोहित साँप काटने से तडप रहा था। उसका सारा शरीर नीला पड गया था उसकी चेतना लुप्त हो गयी थी। ब्राह्मण वैद्य को बुलाने चला गया था।

तारा अपने बेटे को झिझोड कर बोली, "बेटे मेरी आँखो के तारे रोहित बोल बेटे बोल ।"

रोहित नही बोला ।

"बोल मेरे लाल, बोल देख तुझे तेरी माँ मेरे लाडले, अपनी मा को इस तरह बिलखता छोड के मत जा हे भगवान ! तू मेरे प्राण ले ले पर मेरे बेटे रोहित को ठीक कर दे ।"

उसी समय कल्याणी आ गयी। वह अब भी बडबडा रही थी ।

उसे देखते ही तारामती बारूद की तरह फट कर बोली, "देखा तुम्हारे हठ का फल ! मैंने बार-बार कहा कि अंधेरे मे बच्चे को गुभार मे मत डालो पर तुम नही मानी। अपने हठ पर अडी रही और इस फूल-से नन्हे बच्चे को जहरीले साप ने काट खाया इसका रग काला हो गया है। पापिन ! ईश्वर तुम्हे इसका दड देगा ।"

कल्याणी कुछ बोले, इसके पहले की तारामती फिर बोली, "तेरे कोई बाल-बच्चा नही है न, इसलिए तू ममता की पीडा को क्या जाने ? ओह ! भगवान तुझे कभी भी क्षमा नही करेगा ।

उसी समय ब्राह्मण वैद्य जी को लेकर आ गया । वैद्य जी ने रोहित का हाथ अपने हाथ मे लिया ।

उसी समय तारामती ने बिलखकर कहा, " वैद्यराज जी मेरे बच्चे को बचा लीजिए यदि इसे कुछ हो गया तो मैं इसके पिता को क्या मुंह दिखाऊंगी। आपको भगवान यश और धन देगा ; यदि समय वापस आया तो मैं तारामती आपको मुंह-मांगा पुरस्कार दूंगी ।"

वैद्य जी ने बच्चे को हिला-डुला कर देखा । फिर गदन लटकाते हुए कहा, "यह तो मर चुका है। मरे हुए को सिवाय ईश्वर के कोई भी नही जीवित कर सकता ।"

तारामती दहाड़ें मार कर रो पड़ी। वह रोहित से लिपट-लिपट कर प्रलाप करने लगी।

ब्राह्मण ने कल्याणी की ओर देख कर कहा, "शायद तेरे बाँझ रहने के पीछे तेरे ये ही पाप हैं। तूने अपने हठ के कारण इसकी एक तरह से क्रूर हत्या की है—भगवान तुझे कभी भी क्षमा नहीं करेगा। जो नारी करुणा दया, त्याग और उपकार से हीन होती है, वह नारी के रूप मे दानवी होती है। तूने आज इसकी गोद सूनी कर दी है, अब तेरी गोद सदा सूनी रहेगी।"

तारामती तो बस रोए जा रही थी।

फिर अचानक उसने रोहित के शव को गोद मे लिया और बोली "मैं इसका दाह सस्कार करने जा रही हू।"

ब्राह्मण ने कहा ' मैं भी चलता हूँ। दाह सस्कार की दस्तूरी भी देनी होगी।"

'नहीं । मैं तुम क्रूरजनो की छाया भी अपने पुत्र के शव पर नहीं पड़ने दूँगी। मैं अपने बेटे को स्वय श्मशान घाट ले जाऊँगी। वह सुबक पड़ी। उसकी आखें भर-भर आयीं। अपने रोहित को सीने से लगाकर उसने कहा, "चल मेरे लाल, मैं तुम्हे अपने पड़ाव पर पहुँचा दू।"

वह रोहित को लेकर चल पड़ी।

राजा हरिश्चन्द्र घाट पर चाण्डाल बना हुआ पहरा लगा रहा था।

वह काफी बेचैन और परेशान था।

कल रात उसने भयकर सपना देखा था कि कुछ अशुभ घटने वाला है।

उसी समय तारामती श्मशान-घाट पर पहुँच गयी।

इन बारह महीनो क कष्टो ने दोनो के रग-रूप बदल डाये थे। कोई किसी को नहीं पहचान सका। राजा की जटाएँ बढ

गयी। कान्तिहीन चेहरा, धँसी हुई आँखें।

तारामती ने अपने बच्चे को जमीन पर लिटा दिया। नन्हे सुन्दर बच्चे के शव को देखकर राजा दया से भर आया।

उसे अपना पुत्र याद हो आया, यदि वह जीवित होता तो इतना ही बड़ा होता।

तारामती ने बिलख कर कहा, "मेरे लाडले ! सत्य के लिए सर्वस्व त्यागने के बाद भी मुझे यह महादुःख क्यों प्राप्त हुआ है ? यदि मेरे स्वामी आज होते तो मेरे दुःख को बाँट सकते थे। हमारा राजपाट जाता रहा, बन्धु-बान्धव बिछड़ गये। स्त्री-पुत्र बिक गये। ऐसे राजा हरिश्चन्द्र को ऐसा दुरूह दण्ड किन पापों के बदले मिला।"

राजा फिर भी अपनी पत्नी व पुत्र को न पहचान सका। उसे ऐसा लगा कि यह स्त्री शायद उसके घर में कभी दासी रही होगी।

उसने उसके समीप जाकर गौर से देखा तो वह आर्तनाद हो उठा, "यह तो प्राणप्रिया तारामती है ! और यह मेरे सर्वांग से बना प्रिय पुत्र रोहिताश्व है। हा ! मेरे लाडले।"

और दोनों विलाप करने लगे।

रानी तारामती ने पुत्र के दाह संस्कार के लिए कहा तो राजा को वह सभी याद हो आयी जिसने कहा था कि कभी तेरा अपना कोई आया तो उसको भी दस्तूरी लिए बिना दाह संस्कार नहीं करने देना। हाँ क्या ईश्वर स्वयं उसकी परीक्षा लेने आ गया है।

उसने अपने हृदय को कठोर कर कहा, "रानी ! मैं पुत्र का भी दाह संस्कार बिना दस्तूरी लिए नहीं कर सकता। यदि ऐसा करूँगा तो मेरे सत्य की तपस्या का भंग होगा।"

"नाथ ! यह आपका पुत्र है। आप नीच से नीच मनुष्य के

कम करके भी सत्य का ढिढोरा पीट रहे हैं ?" तारामती आवेश में आ गयी। वह तीखे स्वर में बोली, "हे धर्म और सत्य का गुण गाने वाले सत्यवादी हरिश्चन्द्र, क्या आप बता सकते हैं कि यदि ऐसा ही धर्म है तो इस धर्म का क्या लाभ है ? ब्राह्मणदेव, पशु, पक्षी, सत्य, नैतिकता, दया, करुणा के स्वामी को यदि चाण्डाल बनना पड़े तो धिक् है—ऐसे धर्म और दान पुण्य को। आप मेरे बच्चे का दाह-संस्कार कीजिए सत्य की टेक छोड़ कर सब कुछ कीजिए जो एक चाण्डाल करता है।

"नहीं रानी। चाण्डाल-वृत्ति धारण करने से ही क्या हरिश्चन्द्र चाण्डाल हो गया ? सत्य के लिए सर्वस्व विसर्जन करने वाला राजा हरिश्चन्द्र अन्त में सत्य को छोड़ेगा ? नहीं-नहीं रानी, कदापि नहीं"

तारामती ने रोते हुए कहा, "फिर मुझे भी अपने पुत्र के साथ जला दीजिए।"

"हा रानी ! मैं भी कष्ट सहते सहते थक गया हूं। फिर तेरा और पुत्र का वियोग मुझसे नहीं सहा जाता। चाण्डाल की दासता करते-करते मैं ऊब गया हूं। मैं अपने प्राणों का त्याग करूंगा ताकि मैं तुम सबकी यह दुर्दशा न देख पाऊं।"

"प्राणनाथ ! यदि आप प्राण त्याग देंगे तो मैं आपके साथ चिता में जलकर अपने को समाप्त कर दूंगी। मैं तो अब आपके साथ ही स्वर्ग नरक का भोग करूंगी।"

'हे पतिव्रते ! जैसी तुम्हारी इच्छा है वैसा ही होगा।"

राजा ने चिता बनायी। उस पर अपने बेटे को सुलाकर वह भगवान विष्णु का चिन्तन करने लगा। जब तीनों चिता में बैठ कर जलने को तैयार हुए तभी धर्म और देवराज इन्द्र उपस्थित हो गये।

देवराज इन्द्र ने कहा 'हे सत्य शिरोमणि राजा हरिश्चन्द्र !

तुम्हारे त्याग ने समस्त लोकों को जीत लिया है। तुम्हारी परीक्षा भगवान और स्वयं धर्म ले रहा था। तुम परीक्षा में सफल हुए। तुम अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी देवलोक को पा सकते हो।"

"मैं अपनी अयोध्या लौट जाना चाहता हूँ, देवराज! मेरी प्रजा मेरे लिए व्याकुल है।"

तभी विश्वामित्र आ गये। उन्होंने कहा, "राजा! तुम धन्य हो। तुम्हारी रानी धन्य है। तारामती, तुम कहाँ जाना चाहती हो?"

"जहाँ मेरे पतिदेव जायेंगे।"

राजा हरिश्चन्द्र और तारामती देवराज इन्द्र के साथ चले गये।

महर्षि विश्वामित्र ने तारामती से कहा, "वस्तुत पति के सुकर्मों में पत्नी का हाथ होता है। यदि तारामती, तुम न होती तो राजा हरिश्चन्द्र परीक्षा में सफल नहीं होते।

तारामती ने राजा को देखा।

देवताओं ने पुष्प वर्षा की।

सावित्री

प्राचीन काल मे मद्रदेश नाम का एक राज्य था। उस राज्य का राजा अश्वपति था। वह अच्छे आचरण का धर्मात्मा राजा था। वह बडा दानवीर था। उसके द्वार पर कोई भी आया हुआ सतुष्ट होकर ही जाता था। खाली हाथ लौटाना उसके धर्म के प्रतिकूल था।

राजा के राज्यो मे ब्राह्मणो को यज्ञ आदि करने की स्वतन्त्रता थी साथ ही कोई भी शूद्र उसके राज्य मे अपमानित नही होता था। राजा क्षमाशील था।

एक तरह से राजा सभी तरह से सुखी और प्रसन्न था।

पर नियति के खेल निराले हैं।

वह किसी को भी पूरा सुख नही देती। कोई न कोई ऐसी कमी रख देती है जिससे प्राणी को कोई न कोई दुख रहता ही है, अभाव रहता ही है।

अश्वपति को एक बहुत बडा दुख था। वह यह था कि उसके कोई सन्तान न थी। युवा अवस्था मे तो उसने कोई चिंता नही की। जब उसकी उम्र ढलने लगी तब उसे लगा कि बिना सतान के मरना बडा पाप है। उसका न तो यह लोक सुधरता है और न परलोक। वह नरक का भागी होता है।

तब राजा ने अपने गुरुओ को बुलाकर उनसे विचार किया।

"गुरुवर! मैं हर तरह से सुखी राजा हूँ पर नि सन्तान होने

के कारण मैं बड़ा दुखी हूँ। मुझे इस संकट से बचाने के लिए कोई श्रेष्ठ उपाय बतलाइए।"

सभी विद्वानों ने सोच कर कहा, 'आप देवी सावित्री की तपस्या कीजिए। वही प्रसन्न होकर आपको वरदान देगी।"

राजा ने सावित्री देवी की उपासना शुरू कर दी। वह नियम पूर्वक उसकी सेवा करता था। कम अन्न खाता था। ब्रह्मचर्य का पालन करता था।

उसने अठारह वर्ष तक देवी सावित्री का जप-तप किया। एक लाख बार हवन किया।

अन्त में सावित्री देवी उससे प्रसन्न हो गयी। वह प्रकट होकर बोली, "राजा! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। तुमने मेरी जो उपासना-आराधना की है वह सराहनीय है। तुम जो चाहो मुझसे वरदान माँग सकते हो।"

अश्वपति की आंखों मे खुशी के आँसू उमड आये। वह कुछ बोलना चाहता था पर उससे बोला नहीं गया।

"बोलो राजा, बोलो।" सावित्री देवी ने फिर कहा।

राजा ने अपने आप को सँभाला। फिर वह धीरे से बोला, "देवी माँ! आप तो सब कुछ जानती है कि मैंने यह तप क्यों किया है। आप हर किसी के हृदय की बात को जानती हैं! फिर भी आपकी आज्ञा से मैं यह प्रार्थना करूँगा कि मैंने यह तपस्या सन्तान के लिए की है। माँ! यह सच है कि वंशहीन व्यक्ति चाहे वह राजा हो या रंक उसका जीवन पापमय होता है। उसकी गति और मुक्ति किसी भी लोक मे नहीं होती! मुझे आप सन्तान का वर दीजिए।"

सावित्री बोली, 'मुझे पहले ही तुम्हारे तप का अभिप्राय मालूम था। इसलिए मैंने परम पिता ब्रह्मा से अनुरोध कर दिया था। राजा, तुम्हारे सन्तान जरूर होगी।"

"माँ की जय।"

"पर कन्या होगी। अत्यन्त ही सुन्दर, गुणवान और तेजस्वी कन्या ।"

"धन्य हो माँ धन्य हो।"

"राजन्! वह कन्या सती होगी और तुम्हारे कुल का गौरव बढ़ायेगी। जिस तरह पुत्र वंश के नाम को उजागर करता है, उसी तरह वह कन्या तुम्हारे नाम को सारी धरती पर फैलायेगी।"

सावित्री देवी अन्तर्धान हो गयी। राजा के कानों में देवी के कहे हुए शब्द गूँजने लगे।

राजा भी प्रसन्न हो गया।

वह दौड़ा दौड़ा राजमहल में आया और उसने यह शुभ समाचार सबको सुनाया।

महल में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। चारों ओर मंगल गीत गाये जाने लगे।

राजा अश्वपति की सबसे बड़ी रानी का नाम धर्मिष्ठा था, वह भी राजा की तरह सदा धर्म और कर्म का पालन करने वाली थी। उसका हृदय दया का सागर था। उसमें वह डूबी रहती थी।

एक दिन धर्मिष्ठा ने राजा को बताया—"महाराज, एक शुभ संवाद है।"

"बोलो रानी।"

"महाराज! मेरे पाँव भारी है।"

"सच।"

रानी ने लाज के कारण अपनी पलकें झुका लीं।

"ओह रानी! आज मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं है। माँ सावित्री के वरदान का ही यह फल है।

"हाँ महाराज, आप सच कहते हैं कि यह सब उसी की कृपा का फल है।"

"भगवान ! अब जल्दी से जल्दी मुझे वह दिन दिखाये जब मैं एक संतान का पिता कहलाऊँ और मेरी रानी उसकी जननी।"

"हाँ महाराज।"

दोनो बडी आकुलता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

राजा अश्वपति पूजा से निवृत्त होकर सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे।

सूर्य भगवान अपने सम्पूर्ण तेज से चमक रहे थे। आकाश साफ और नीला था। हवा मे सुगन्ध मिली हुई थी। शायद वह बगीचे की ओर से आ रही थी।

वे जैसे ही इस कार्य से निवृत्त हुए वैसे ही एक दासी ने आकर कहा, 'महाराज की जय हो ! बधाई "

"क्यो क्या हुआ ?" राजा ने पूछा।

'महाराज आपके पुत्री हुई है।"

"सच।'

"बहुत बहुत बधाई।"

राजा ने अपने गले का हार उतार कर उस दासी को दे दिया।

दासी ने महाराज की एक बार फिर जयकार की।

राज ने स्वय जाकर देखा तो सचमुच कन्या अत्यन्त रूपवती होने के साथ-साथ तेजस्वी थी।

धर्मिष्ठा ने राजा से कहा "यह कितना बडा सच है कि स्त्री माँ बन कर बडा सुख और संतोष पाती है। किसी बात से वह ऐसा सतोष नही पाती। मैं अपने हृदय की प्रसन्नता को कह नही पा रही हूँ महाराज !"

हाँ रानी, यह सब माँ सावित्री की कृपा है।" राजा ने

कहा, "मैं अभी राजगुरु व विद्वान् पडितो को बुला कर नामकरण आदि का मुहूर्त निकलवाता हूँ।"

"ठीक है महाराज।"

महाराज ने शीघ्र ही महामत्री को बुलाया। उन्होने अपने मन की बात कही।

थोडी देर मे दरबार मे राजगुरु के अलावा बडे-बडे पडित आ गये।

उन्होने शुभ मुहूर्त निकाल लिया।

नामकरण के दिन हवन और पूजा की गयी। ब्राह्मणो को भोजन कराया। गरीबो को उनकी जरुरतो के मुताबिक वस्तुएँ बाँटी गयी।

पडितो ने इस कन्या को सावित्री का वरदान माना। इसलिए इसे सावित्री नाम दिया गया।

सावित्री दिन प्रतिदिन बडी होने लगी। बेटी को बडी होने मे क्या देर लगती है? देखते-देखते सावित्री युवा होने पर उसका सौन्दर्य खूब बढ गया। वह अप्सरा-सी लगने लगी।

एक दिन राजा-रानी बगीचे मे टहल रहे थे। सावित्री भी अपनी सखियो के साथ खडी थी।

एक नटखट भँवरा सावित्री पर मँडराने लगा। सावित्री उसे बार-बार हटाती। वह भँवरा इतना बदमाश था कि फिर आकर सावित्री पर मडराने लगता।

सावित्री ने अपनी खास सहेली वनिका को कहा, "वनिका! तुम खडी-खडी क्या कर रही हो? इस भँवरे को हटाओ न!"

वनिका ने मजाक से कहा, "अब यह भँवरा नही हटेगा, राजकुमारी जी! यह भँवरा कह रहा है कि हमारी राजकुमारी

ज। ान हो गयी है।

राजा और रानी ने यह बात सुन ली।

रानी ने कहा, "महाराज ! आपने कुछ सुना कि यह सखि क्या कह रही है।"

'हाँ रानी हमारी बेटी अब युवा हो गयी है।"

"युवा बेटी मा बाप को बताती है कि अब मेरे हाथ पीले करो। भँवर मँडराने लगे है। कांटे वस्त्र उलझाने लगे हैं और नींद कम आने लगी है।"

"हाँ रानी हम शीघ्र ही इस पर सोचेंगे। यह सही है कि जो पिता अपनी पुत्री के योग्य होने पर अच्छे घर की खोज नहीं करता उसकी हर जगह निंदा होती है । रानी ! हम जल्द से जल्द सावित्री के लिए एक योग्य वर की तलाश करेंगे ।

राजा ने थोडी देर सोचा। फिर कहा, "अच्छा तो यह होगा कि हम सावित्री को ही पूछ लें—विवाह के बारे मे उसकी क्या इच्छा है ?

"हाँ, यही ठीक रहेगा।" रानी ने मुस्कराते हुए कहा, "समझदार बेटी और बेटे को यह अधिकार देना चाहिए। इसे ही महाराज निज की स्वतन्त्रता कहते हैं।"

राजा ने जोर से पुकारा, "सावित्री बेटी सावित्री ।"

सावित्री ने जैसे ही पिताजी की पुकार सुनी वैसे ही वह लपक कर आयी।

यौवन-सरोवर के कमल खिल गये थे। अचानक पिता के पुकारने पर साविनी को लगा कि अवश्य ही मेरे पिता ने मेरी सहेलियो व दासियो की बातें सुन ली हैं। अत वह मारे शर्म के लाल हो गयी।

उसके नयन अपने आप ही झुक गये। वह अपने अँगूठे से दूब

को कुरेदने लगी।

"क्या बात है बेटी ? इतनी चुप-चुप कैसे खड़ी हो गयी ?" रानी ने उसके समीप आकर उसे अपने गले लगाया।

"यूं ही पिता जी।"

"सुनो बेटी !" रानी ने स्नेह से कहा, "तुम्हारे पिताजी तुम से कुछ कहना चाहते हैं। ध्यान से सुनो।"

"कहिए पिताजी।" सावित्री ने सिर झुकाए हुए कहा "मैं आपकी बेटी हूँ। आपकी हर बात को सुनना मेरा धर्म है। आप की हर आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। आप जो चाहे कहिए।"

राजा ने गंभीर स्वर में कहा, "अब तुम युवा हो गयी हो, यानी कली से फूल। दूसरे शब्दों में विवाह के योग्य। हम चाहते हैं कि तुम्हारे लिए कोई योग्य वर की खोज करके हम अपने धर्म का पालन करें।"

"हाँ पिताजी, मैं भी आपकी हर आज्ञा मानकर अपने धर्म का पालन करूँ।" सावित्री ने विनीत स्वर में कहा।"

"तुम योग्य व समझदार हो अतः इस विषय में हम तुम्हारी इच्छा की स्वतन्त्रता चाहते हैं।" राजा ने कहा, "तुम्हें संकोच करना और डरना नहीं चाहिए। यदि तुम्हें कोई पुरुष पसंद हो तो हमें बताओ।"

सावित्री ने कहा, "पिताजी ! मुझे अपने बहुत स्वतन्त्रता दे रखी है पर जो कन्या मर्यादा के बाहर जाती है वह अधम ही करती है। मर्यादा स्त्री का धर्म है। जो काम माँ बाप की सीमा में है, उसे भला मैं आपकी आज्ञा के बिना कैसे कर सकती हूँ। मैं जानती हूँ कि हमारे यहाँ इस तरह की स्वतन्त्रता है।"

'मुझे तुमसे यही आशा थी बेटी।" रानी ने उसको स्नेह से कहा।

राजा ने कहा, "मैं चाहता हूं कि तुम अपने मन पसन्द वर खुद ढूंढो। मैं एक हर प्रकार से सक्षम बाप हूं। अपनी बेटी की हर इच्छा को मैं किसी भी सूरत मे पूरी कर सकता हूँ। तुम्हारी इच्छा भी पूरी करूँगा। तुम अपने लिए लडके को पसन्द करो। भगवान ने चाहा तो सब ठीक होगा।"

"यह मेरे लिए अच्छा रहेगा।"

राजा और रानी चले गये।

दासियो व सखियो ने सावित्री को फिर घेर लिया। वे उसका मजाक करने लगी।

राजा ने दूसरे दिन दरबार मे अपने वृद्ध मन्त्रियो और प्रमुख ब्राह्मणो को इकट्ठा किया। उनको अपने मन की बात बतायी।

वृद्ध महामन्त्री ने कहा, "महाराज! यही सही तरीका है। स्त्री को कम से कम यह तो स्वतन्त्रता तो मिलनी ही चाहिए, वह अपना वर स्वय ढूंढे। हालाकि स्वयवर भी इस स्वतन्त्रता का एक हिस्सा है। महाराज, केवल राजा का पुत्र होने से ही वह योग्य हो सभी कलाओ मे पूर्ण हो, यही जरूरी नही। स्वयवर मे तो हम नरेश का नाम और राज्य का ही वर्णन करते हैं। उनके आचरण को तो हम नही जानते।"

'हां महामन्त्री सावित्री योग्य और समझदार है। हम चाहते है कि वह अपनी इच्छा से ही अपना वर चुने। आप इसके साथ विश्वासी सैनिक और सहेलियाँ भेज दीजिए। यह यात्रा पर जायेगी।" राजा ने खुले मन से कहा।

राजगुरु ने उठकर कहा, "इनके साथ मेरी बेटी भी जायेगी। मेरी बेटी सुज्ञाना भी धर्मशास्त्र की पडित है, वह सावित्री को धर्म की मर्यादा बताती रहेगी।"

"यह तो और अच्छा रहेगा।" रानी ने कहा, "जब कभी

भी राजा के पाँव गलत रास्ते पर जाते हैं, तब गुरु, मुनि और ऋषि ही उन्हे राह दिखाते हैं।"

"महाराज ने कहा, "फिर सावित्री के जाने की तैयारी की जाय।"

शीघ्र ही तैयारियां कर दी गयी।

जाने के पहले सावित्री ने राजा-रानी से आशीर्वाद लिया।"

राजा ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा, 'माँ सावित्री देवी! तुम्हारी मनोकामना पूरी करे।"

रानी ने उसे गले लगा कर कहा, "मेरी बेटी को उसके मन को भाने वाला पति मिले।"

सावित्री रवाना हो गयी।

सावित्री सारे आर्यावर्त में घूमी। अनेक नगरों व राजकुमारों से मिली। पर उसे कोई भी अच्छा नहीं लगा। न जाने क्यों उसे जीवन का ऐश्वर्य पसंद नहीं आया। महलों की दिखावटी तड़क भड़क और अहंकार ने उसे प्रभावित नहीं किया।

एक राजकुमार ने जब उससे कहा, 'देवी! मैं उस कुल का राजकुमार हूँ जिन्होंने देवता और दैत्यों पर राज्य किया था।

सावित्री मुस्करा कर बोली, "आप हर किसी वस्तु को अधिकार में कर सकते हैं। आप पृथ्वी के लोगों को अपने हथियारों के बल से दास बना सकते हैं। पर अपने प्रेम से कितने लोगों को दास बनाया है। आपने कितने लोगों के मन पर विजय पायी।"

राजकुमार चुप हो गया।

सावित्री ने कहा, "आपको शायद यह पता नहीं है कि मेरे पिता स्त्री स्वतंत्रता के हामी है। उन्होंने मुझे इसीलिए यह कर्तव्य से भरा कार्य सौंपा है कि मैं किसी की अर्धांगिनी बन कर रहूँ। आपके अहंकार और विचारों से लगता है कि आप मुझे दासी

राजा ने कहा, "मैं चाहता हूं कि तुम अपने मन पसन्द वर खुद ढूंढो। मैं एक हर प्रकार से सक्षम बाप हूं। अपनी बेटी की हर इच्छा को मैं किसी भी सूरत मे पूरी कर सकता हूं। तुम्हारी इच्छा भी पूरी करूंगा। तुम अपने लिए लड़के को पसन्द करो। भगवान ने चाहा तो सब ठीक होगा।"

"यह मेरे लिए अच्छा रहेगा।"

राजा और रानी चले गये।

दासियो व सखियो ने सावित्री को फिर घेर लिया। वे उसका मजाक करने लगी।

राजा ने दूसरे दिन दरबार मे अपने वृद्ध मन्त्रियो और प्रमुख ब्राह्मणो को इकट्ठा किया। उनको अपने मन की बात बतायी।

वृद्ध महामन्त्री ने कहा, "महाराज! यही सही तरीका है। स्त्री को कम से कम यह तो स्वतन्त्रता तो मिलनी ही चाहिए, वह अपना वर स्वय ढूढे। हालांकि स्वयवर भी इस स्वतन्त्रता का एक हिस्सा है। महाराज, केवल राजा का पुत्र होने से ही वह योग्य हो, सभी कलाओ मे पूर्ण हो, यही जरूरी नही। स्वयवर मे तो हम नरेश का नाम और राज्य का ही वर्णन करते हैं। उनके आचरण को तो हम नही जानते।"

'हां महामन्त्री, सावित्री योग्य और समझदार है। हम चाहते है कि वह अपनी इच्छा से ही अपना वर चुने। आप इसके साथ विश्वासी सैनिक और सहेलियां भेज दीजिए। यह यात्रा पर जायेगी।" राजा ने खुले मन से कहा।

राजगुरु ने उठकर कहा "इनके साथ मेरी बेटी भी जायेगी। मेरी बेटी सुज्ञाना भी धर्मशास्त्र की पडित है, वह सावित्री को धर्म की मर्यादा बताती रहेगी।"

"यह तो और अच्छा रहेगा।" रानी ने कहा, "जब कभी

भी राजा के पाँव गलत रास्ते पर जाते है, तब गुरु, मुनि और ऋषि ही उन्हे राह दिखाते हैं।"

"महाराज ने कहा, "फिर सावित्री के जाने की तैयारी की जाय।"

शीघ्र ही तैयारियाँ कर दी गयी।

जाने के पहले सावित्री ने राजा-रानी से आशीर्वाद लिया।"

राजा ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा, 'माँ सावित्री देवी! तुम्हारी मनोकामना पूरी करे।"

रानी ने उसे गले लगा कर कहा, "मेरी बेटी को उसके मन को भाने वाला पति मिले।"

सावित्री रवाना हो गयी।

सावित्री सारे आर्यावर्त मे घूमी। अनेक नगरो व राजकुमारो से मिली। पर उसे कोई भी अच्छा नही लगा। न जाने क्यो उसे जीवन का ऐश्वर्य पसद नही आया। महलो की दिखावटी तडक भडक और अहकार ने उसे प्रभावित नही किया।

एक राजकुमार ने जब उससे कहा, 'देवी! मैं उस कुल का राजकुमार हूँ जिन्होने देवता और दैत्यो पर राज्य किया था।

सावित्री मुस्करा कर बोली, "आप हर किसी वस्तु को अधिकार मे कर सकते हैं। आप पृथ्वी के लोगो को अपने हथियारो के बल से दास बना सकते हैं। पर अपने प्रेम से कितने लोगो को दास बनाया है। आपने कितने लोगो के मन पर विजय पायी।"

राजकुमार चुप हो गया।

सावित्री ने कहा, "आपको शायद यह पता नही है कि मेरे पिता स्त्री स्वतन्त्रता के हामी हैं। उन्होने मुझे इसीलिए यह कर्तव्य से भरा कार्य सौंपा है कि मैं किसी की अर्धांगिनी बन कर रहूँ। आपके अहकार और विचारो से लगता है कि आप मुझे दासी

हुई पवित्र वन में पहुँची।
बना कर रखेंगे।"

इस तरह सावित्री अनेक राजकुमारों और राजाओं से मिलती

वहाँ उसने एक ऋषि की तरह जीने वाले युवक को देखा। वह युवक चेहरे से तेजस्वी लग रहा था। उसके चेहरे की शालीनता बता रही थी कि वह किसी उच्च कुल का स्वामी है।

उसने अपने कन्धे पर लकड़ियों का गट्ठर रखा था।

वह बहुत ही धीरे-धीरे जा रहा था। सामने उसने रथों व घोड़ों को आते हुए देखा तो भयभीत हो गया।

उसने सोचा कि कहीं हमारा पुराना शत्रु तो नहीं आ गया है?

ओह! यदि वह आ गया है तो अवश्य ही वह मेरे अंधे माँ-बाप को सतायेगा।

उसने भगवान को याद किया—प्रभु! चाहे मेरे प्राण ले लेना पर मेरे माँ-बाप को जरा भी कष्ट न पहुँचाना।

तभी उसने देखा कि रथ पर एक सुन्दर युवती सवार है।

यह इस पवित्र वन में कौन हो सकती है। रथ, घोड़े और पैदल रक्षकों के साथ है यह युवती। जरूर यह कोई बड़े राजा की बेटी होगी।

सावित्री ने भी उस तेजस्वी युवक को देखा। उस युवक के चेहरे पर एक सलोना खिंचाव था।

सावित्री उसे देखती रही। उसके मन में भी अजीब तरह का आकर्षण पैदा हो गया। मन में उस युवक के बारे में जानने की इच्छा हुई। वैसे उस विदुषी सावित्री ने इतना तो अनुमान लगा लिया कि यह कोई श्रेष्ठ युवक है। एकदम कुलीन।

सावित्री ने रथ रोका। नीचे उतरी। बोली, 'क्या मैं जान सकती हूँ कि आप कौन हैं?'

युवक ने शालीनता से कहा, "अवश्य।"

"आपका नाम क्या है ?"

"मेरा नाम सत्यवान है।"

"पिता का नाम ?"

"राजा द्युमत्सेन।"

"इस घोर पवित्र वन मे आप यह लकडियो गट्ठर उठा कर कहाँ जा रहे हैं ?"

"देवी ! भाग्य के फेर निराले है। मनुष्य क ो सात जन्मो के कर्मों के फल भोगने पडते है। मेरे पिता शाल्व दे श क राजा थे। अन्धे होने से वे राज-काज भली भाँति नही दे र पाये। मैं भी छोटा और नादान था। इन सभी स्थितियो क ा फायदा उठा कर पडोसी देश के राजा ने आक्रमण कर दिय ा। उसने शाल्व देश की स्वतन्त्रता छीन ली। हम अपने स ंट के दिन यहाँ बिता रहे हैं। चूँकि मेरे माँ बाप नेत्रहीन है, इस ि लए मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ।

"ओह ! क्या आप इस आयु मे इस घोर जग ल मे रह कर जिस तरह का जीवन बिता रहे हैं उससे आप का मन उचाट नही होता ?" सावित्री ने गंभीर होकर पूछा।

"नही देवी, बिल्कुल नही होता।" सत्यवान ने कहा, "माँ-बाप की सेवा मे जिसे आनन्द नही आता है, वह पुत्र नरक को जाता है। उसकी उन्नति कभी नही होती। वह यश के शिखर पर नहीं पहुँचता।"

'आप बडे ही शालीन और विनम्र है।" सावित्री ने झट से पूछा, "इस काय मे आपकी पत्नी अवश्य ही स हयोग करती होगी ?"

सत्यवान मुस्कराया, बोला, 'नही देवी ! मैं त ो कुँवारा हूँ। माँ बाप की सेवा म इतना लीन हूँ कि इसके बारे मे कभी सोचा-

समझा ही नहीं है। फिर यदि कोई पत्नी मेरे अनुकूल नहीं हुई तो मेरे माँ-बाप की सेवा में बाधा पड़ेगी।"

"आपके विचार बड़े ऊँचे हैं।"

सावित्री को यह जानकर बड़ी ही प्रसन्नता हुई कि सत्यवान कुँवारा है उसने अपना परिचय दिया, "मेरा नाम सावित्री है, मैं राजा अश्वपति की बेटी हूँ। आपसे मैं बड़ी प्रभावित हुई। यह मेरा सौभाग्य है।"

उसने मन ही मन सोच लिया कि जो इस तरह सेवा करने वाला है वह कभी भी दूसरों को दुख नहीं दे सकता।

उसने रथ पर बैठते हुए कहा, "आर्य पुत्र! मैं आपको प्रणाम करती हूँ तथा आपके माता-पिता की सेवा करने के लिए प्रशंसा करती हूँ।

सत्यवान ने गर्दन हिलाकर कहा, 'माँ-बाप की सेवा तो पुत्र का धर्म और कर्त्तव्य है। धर्म और कर्त्तव्य प्रशंसा में नहीं आते।"

सावित्री उसे मुग्ध भाव से देखकर चलती बनी। सुज्ञाना ने उसकी बात को समर्थन दिया।

सावित्री लौट आयी।

उसके लौटने की खुशी राजा अश्वपति को खूब हुई।

सबसे पहले सावित्री को आराम करने के लिए कह दिया गया।

रात के भोजन के समय राजा-रानी ने सावित्री से पूछा, "बेटी! तुम्हारी यात्रा का क्या फल रहा?"

सावित्री ने बताया, "पूजनीय माताजी और पिताजी! मेरी यात्रा बहुत ही सफल रही। अनेक देशों का परिचय हुआ। अनेक जंगलों को देखा। सबसे बड़ी बात यह थी कि अनेक लोगों से मिलने पर मेरे अनुभव बढ़े तथा पहचानने की शक्ति

को बल मिला। पिताजी ! न जाने क्यो प्राणी सब कुछ पाकर अहकार का शिकार हो जाता है । किसी को अपने रूप का घमड है तो किसी को अपने धन का। किसी को अपने पद का घमड है तो किसी को अपनी शक्ति का । महाराज ! आपने मुझे अपने वर का चुनाव करने की जो जिम्मेदारी सौपी है, वह बहुत उचित है, पर इससे मैं भी दुविधा म पड गयी।"

"पर तुमने कोई लडका पसद किया तो है, हमे तो यह बताओ।" रानी ने कहा।

"हां, मां।"

"वह भाग्यशाली कौन है।" मा ने पूछा।

"मातेश्वरी, वनवास मे रहने वाला राजकुमार सत्यवान है।"

"साफ साफ सब कुछ कहो।" राजा ने अत्यन्त विनम्रता से कहा।

"महाराज ! शाल्व देश का राजा द्युमत्सेन बडा ही पराक्रमी और धर्म को मानने वाला राजा है। दैवयोग से वह अधा हो गया । अधा होने पर उसके राज काज को सौंपने वाला कोई नही रहा। उसका पुत्र छोटा और नादान था जो राज्य को न चला सके।

उसकी इस निर्बलता का पता पडोसी देश के राजा को लगा। वह महाराज द्युमत्सेन का पुराना शत्रु था। कई बार वह द्युमत्सेन से हार चुका था।

इस बार उसकी लाचारी का उसने फायदा उठाया और उसने आक्रमण बोल दिया। उसने शाल्वदेश को रौंद डाला।

अधा राजा और रानी अपने एकमात्र बेटे सत्यवान को लेकर भाग गये।

वे घूमते-घूमते पवित्र वन मे आ गये, जहां वे अभी अपने सकट के दिन बिता रहे हैं। महाराज ! उसी राजा का बेटा

सत्यवान है। वह अब जवान है और उसके मुख की कान्ति की किरण दमकती रहती है। वह हर विद्या में निपुण है और बहुत ही सरल और मधुर स्वभाव का है। महाराज ! मैंने सत्यवान को ही पसंद किया है।" सावित्री यह कहते हुए शरमा गयी। उसके नयन झुक गये।

"पर ।" रानी ने शंका प्रकट की।

मातेश्वरी ! यह सच है कि वे अभी वन में रहते हैं पर है तो राजा के पुत्र ! समय बदलते देर नहीं लगती ! फिर मैं भी उसकी पत्नी बनकर सेवा-धर्म करूँगी। सेवा, वह भी अंधे सास ससुर की। मुक्ति का सच्चा मार्ग है।"

जैसी तुम्हारी इच्छा बेटी।" रानी ने कहा, "पर जो मख मली गद्दों पर चलते है, जो वाहन के नीचे पाँव नहीं रखते, वे कैसे काँटों से भरे रास्तों पर चलेंगे।'

' मातेश्वरी, आप ठीक कहती हैं, पर जिन्होंने पक्के इरादे कर लिए हैं, वे हर रास्ते पर चल सकते है। मैं तो सत्यवान से ही विवाह करूँगी। मैंने मन म उ ह अपना पति मान लिया है।"

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' राजा ने कहा, 'कल मैं दरबार में इस विवाह के लिए मन्त्रियों व पूजनीय ब्राह्मणों से विचार करूँगा।'

सावित्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

दूसरे दिन दरबार में राजगुरु, पण्डित और मन्त्रीगण उपस्थित थे।

राजा ने सारी बात बताकर कहा, "मेरी बेटी सावित्री ने सत्यवान को अपना वर चुना है।'

राजगुरु ने कहा, 'कोई बात नहीं ! जिसके भाग्य में, जो

लिखा है, वही होता है। सावित्री का यह निर्णय पहले से ही तय है।"

तभी द्वारपाल ने सिर झुकाकर कहा, "महाराज की जय हो! देवर्षि नारद पधारे है।"

राजा ने चौंककर कहा, "देवर्षि नारद और इस समय!"

राजा सिंहासन से जल्दी उतरा। वह भागकर दरवाजे पर गया।

राजा को देखते ही नारद जी ने मुस्करा कर कहा, "नारायण नारायण!"

'देवर्षि को मेरा प्रणाम!" राजा ने दंडवत् होकर नारद जी जी को प्रणाम किया।

"सुखी रहो राजन्!"

"आइए देवर्षि आइए और मेरे दरबार की शोभा में चार चाँद लगाइए।"

देवर्षि नारद राजा के पीछे-पीछ आते रहे। वे अपना इकतारा बजाते हुए नारायण नारायण करते जा रहे थे।

दरबार में उन्हें उचित आसन दिया गया। महाराज की ओर देखकर नारद जी ने पूछा, "राजन! आज तो दरबार खचाखच भरा है। किस बात पर विचार हो रहा है?'

राजा ने सारी बात बताकर कहा, 'मेरी बेटी ने सत्यवान को अपना वर चुना है। वह उसे मन से वर भी चुकी है।"

"अच्छा!" देवर्षि नारद ने सावित्री की ओर देखकर पूछा, "क्यों बेटी, क्या मैं सच सुन रहा हूँ।"

"हाँ देवर्षि।"

"नारायण नारायण।"

"मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मनोकामना पूरी हो देवर्षि। सावित्री ने झुककर कहा।

"पर बेटी !" कहते कहते रुक गये देवर्षि नारद जी।"

"आप रुक क्यों गये देवर्षि ?" सावित्री ने उन्हें गौर से देखा।

"बेटी ! यह ठीक नही रहेगा।"

'क्यो देवर्षि ?"

"तुम्हे वर्तमान, भूत और भविष्य का पता नही है।" देवर्षि नारद ने कहा, 'जो तीनो लोको की लीला को जानता है वह उस कडवे सत्य को भी जानता है जो अनजान है।'

"महात्मन् ! आप साफ-साफ क्यो नही कहते ?" सावित्री ने व्यग्रता से कहा।

'बेटी। मैं जानता हूँ कि सत्यवान जैसा सच्चा सेवाव्रती और शालीन युवक पृथ्वी पर नही है। पर बेटी, तुम्हे एक बात का पता नही है। बेटी। सत्यवान का एक नाम चित्राश्व भी है। उसे बचपन से ही घोडे प्यारे थे। वह मिट्टी के घोडे बनाता था। जब वह कभी चित्र बनाता था तो घोडे का ही चित्र बनाता था।"

'क्या वह सावित्री के लिए योग्य नही है भगवन् ?" राजा ने पूछा।

'है, और शत-प्रतिशत है। वह तेजस्वी, बुद्धिमान वीर और बडा ही सहनशील है। राजन्, वह उदार, सुन्दर और मनोहर भी है। वह अपने माता-पिता की बहुत सेवा करता है।

राजा ने कहा, "भगवन् ! जब उसमे गुण ही गुण हैं तो वह सावित्री के योग्य क्यो नही ?"

' राजन् ! सत्यवान मे शायद इतनी पूर्णता इसलिए है कि उसमे एक बडा दोष है।"

"कौन सा ?"

"आज से एक साल के बाद सत्यवान की मृत्यु हो जायेगी।"

"क्या ?" सावित्री, राजा और रानी के मुख से एक साथ निकला। फिर वे सब उदास हो गये।

सावित्री ने कहा, "क्या सच है ?"

"हां बेटो !" देवर्षि नारद ने कहा, "यह अटल सत्य है। यह टल भी नहीं सकता।"

सावित्री का चेहरा पीला पड़ गया। उसके मुंह से एक लम्बी आह निकली, 'हे भगवान !"

राजा ने तुरन्त कहा, "फिर यह विवाह नहीं हो सकता।"

रानी बोली, "स यवान से भी गुणी, दानी और सेवाव्रती और लोग मिल जायेंगे।"

सावित्री ने नारदजी की ओर देखकर कहा, "नहीं, ऐसा नहीं होगा ! मैं सावित्री हूं। मैंने अपने मन से जिसे एक बार अपना पति चुन लिया है, वही मेरा पति होगा। स्त्री अपना पति बार-बार नहीं चुनती। ऐसा एक बार ही होता है।"

"बेटी !" रानी ने पुकारा।

सावित्री ने अपने नयनों मे आंसू लाकर कहा "सभाजनो ! आयु गुण दोष के आधार पर सती नारियां अपने मन से तय किये पति को नहीं बदलती। यह छोटापन और स्वार्थ है।"

रानी बोली, 'बेटी ! जरा सोचो, क्या जान बूझ कर कोई मां-बाप अपनी लाडली बेटी को कुएं मे धकेल सकते है ? यह जानकर कि तुम्हारे सुहाग की आयु केवल एक वर्ष है।"

"चाहे एक वर्ष हो या एक माह, मैं सत्यवान को ही अपना पति बनाऊंगी।"

नारद ने कहा, "तुम धन्य हो सावित्री ! राजन् ! सावित्री का निश्चय हिमालय की तरह अटल है। अब उसे रोकना ठीक नहीं।"

राजा ने सिर झुकाकर कहा, "जिनके निर्णय मे भगवान

नारद जी भी सहमति हो, उसे भला कौन टाल सकता है! भगवन्, ऐसा ही होगा।"

"बेटी, तुम्हारा कल्याण हो।" नारद जी चले गये।

राजा शादी की व्यवस्था करने लगे।

राजा ने सोच विचारकर यह तय किया कि विवाह वन मे करना पडेगा। सावित्री की भी यही राय थी।

शीघ्र ही राजा ने शाल्व नरेश द्युमत्सेन को सदेशा भिजवाया कि वे अपनी लडकी का विवाह करने आ रहे है।

राजा ने विवाह की सारी चीजे इकट्ठी की। वृद्ध पण्डितो, पुरोहितो को लेकर पवित्र वन की ओर चला। रानी भी साथ थी।

राजा ने वडी दूर अपना मार्थ रुकवा दिया। वह पैदल ही चला।

जब सत्यवान को यह मालूम हुआ कि उसका विवाह सावित्री से हो रहा है तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ।

शाल्व नरेश के पास जाकर अश्वपति ने अपनी बेटी का निणय सुनाया, "राजर्षि, मैं मद्रदेश का राजा हूँ। मेरी बेटी आपके पुत्र से विवाह करेगी। यही उसका निणय है। उसने सत्यवान को जब से देखा है तब से उसने आपके बेटे को अपने मन से वर लिया है।"

द्युमत्सेन अधे थे। फिर भी उन्होने कहा, "आप मद्र देश के नरेश हैं। आपकी कीर्ति और तप का चारा ओर बोलवाला है पर महाराज! हम पति पत्नी अधे ठहरे। हमारे पास आपकी बेटी के सुख ओर सुविधाओ की थोडा भी व्यवस्था नही है। यह घोर वन है। जगलो जानवरो से भरा है। पग पग पर काटे हैं। आपकी बेटी क्या इतना कठिन जीवन जा पायेगी।'

"हाँ राजर्षि! मेरी बेटी ने आप लोगो की सेवा के लिए ही तो यह निर्णय लिया है।"

"हम अन्धे हैं। हमारे सेवाभावी पुत्र को हमारी सेवा से जरा भी फुसत नही मिलती है। यह भी सभव है कि वह आपकी बेटी का हृदय से मनोरजन भी न कर सके।"

"राजर्षि!" अश्वपति ने कहा, "मेरी बेटी सावित्री यह सब जानती है।"

"जानने के बाद यह निणय ?"

"हाँ राजर्षि! उसने काफी सोच समझ कर यह निणय लिया है।"

इस बार सत्यवान की माँ ने कहा, "तो ठीक है पर महा-राज जो लडकी फूलो मे पली है, जिसकी सेवा मे सौ सौ दासियाँ काम कर रही हैं, ऐसी लडकी हम वनवासियो के साथ कैसे रहेगी ?"

अश्वपति ने कहा "आप ठीक कहती है कि मेरी बेटी लाडली है। वह फूलो मे पली है पर महिषी जो पक्का निणय कर लेते हैं, वे कोई चिन्ता नही करते ? फिर मेरी बेटी सावित्री सहनशीलता की मूर्ति है।"

मालवा देश की कन्या अश्वपति की पत्नी ने कहा, "बहन जी! यह भी सच है कि समय सदा एक सा नही रहता। राजा से ऋषि हो गए आप कल वापस राजा भी बन सकते है।"

रानी ने यह कह तो दिया पर उसे सहसा नारद जी की बात याद आ गई कि सावित्री का सुहाग पूरे एक साल का भी नही है। जिसे केवल चन्द माह पति का सुख भोगना है। उसके लिए तो फूल और काटे बराबर है।

"वैसे जो भाग्य मे लिखा है, वह तो होता ही है।" राजर्षि ने कहा, "भाग्य का लिखा कभी नही टलता।"

"हा राजर्षि ! आप ठीक कहते हैं। भाग्य का लिखा, कभी नही टलता। आप अपने पुत्र सत्यवान को कह कर मेरी इच्छा को पूरा कीजिए। मैं आपकी सारी स्थितियो से परिचित हूँ। मेरी बेटी भी इस कठोर सच को जानती है, ऐसी स्थिति मे यह विवाह होगा ही।"

सहसा अश्वपति की निगाह सत्यवान पर गयी। उन्होंने कहा, "बेटा ! तुम्हारी इस विवाह मे सहमति है कि नही ? तुम्हें मेरी बेटी पत्नी के रूप मे स्वीकार है कि नही ?"

"राजन् ! मैं सत्यवान अपनी इच्छा से कुछ नही करता। पिता की आज्ञा ही मेरे लिए सब कुछ है। मेरे माता पिता जो कुछ भी कहगे, वही मुझे स्वीकार है।"

सत्यवान ने हाथ जोड दिये।

"बेटा ! ऐसे सुयोग्य राजा की बेटी को पत्नी के रूप मे ग्रहण करो। यदि कन्या पक्ष वाले स्वय आ जाएँ तो धर्म ने कहा कि उस बेटी के बाप का सम्मान करो। उस आयी हुई लक्ष्मी को कभी भी न ठुकराओ।"

'जो आज्ञा पिताजी।'

'महाराज अश्वपति, आप विवाह को सम्पन्न कराइये।" द्युमत्सेन ने कहा।

थोडी देर मे जगल मे मगल हो गया। वेद-मन्त्रो से आकाश गूजने लगा। वन के सारे जीव जन्तु ब्राह्मणो के स्वर से निकले मन्त्रो को सुन सुनकर अपना कल्याण करने लगे।

विवाह हो गया।

सभी ने वर-वधू को आशीर्वाद दिया। सावित्री बडी प्रसन्न थी।

राजा अश्वपति ने द्युमत्सेन को कहा, 'राजर्षि ! मेरे एक ही सन्तान है। वह भी बेटी ! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो

मैं अपना सारा राज्य कन्यादान मे दे सकता हूँ।"

"नही महाराज ! हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय भूमि का दान नही लेते। वे अपनी शक्ति से ही भूमि पर अधिकार करके उसका सुख लेते है। दान लेना ब्राह्मण का धर्म है।"

सत्यवान ने भी अपने पिता की बात का समर्थन किया, "मेरे पिताजी ठीक कहते है। मेरे धर्मपिता ! ससुर भी पिता होता है। धर्म का पिता ! आप हमे अपने भाग्य पर छोड कर जाइए। आपने अपनी बेटी को जान-बूझ कर वनवासियो को सौंपा है कोई चिन्ता न करे।"

सावित्री ने भी गर्व से कहा, 'हाँ पिताजी ! आपकी बेटी ने सोच समझ कर यह किया है अत उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। अब मैं यहाँ रह कर अपने पतिव्रता धर्म का कठोर रूप से पालन करूँगी। मन, कर्म और वचन तीनो से मैं पति और मेरे सास-ससुर की सेवा करूँगी। अपने पति के हर दुख मे अपना हिस्सा बटाऊँगी।"

राजा सावित्री को एकात मे ले गए।

रानी भी साथ चल पडी।

एक घने झाड के पीछे ले जाकर रानी सावित्री के चेहरे को देखती रही। सुहागिन के भेष मे सावित्री बहुत ही सुन्दर लग रही थी। एकाएक रानी रो पडी।

"क्या बात है माँ ?"

"बेटी ! एक तो तुमसे विदा लेते समय मेरा हृदय फटा जा रहा है। फिर तुम्हारे विधवा हो जाने को बात को सुनकर मेरा मन बस छलनी सा हो रहा है।"

"बेटी, बेचारे सत्यवान को क्या पता कि उसकी उम्र एक साल के लगभग बाकी रही है। बेटी ! हम सब यह सोच सोच कर दुखी हैं।" राजा ने अपनी आखो के आँसू पोछकर कहा।

"पिताजी ! भाग्य का लिखा अटल है । मैं एक साल में ही अपने पति सास और ससुर की सेवा करके अपने जीवन को सफल कर लूंगी। एक साल बहुत होता है, एक सार्थक जीवन जीने के लिए। मैं अपना एक एक पल सेवा में लगा दूंगी। एक साल में ही सारी उम्र का आनन्द ले लूंगी।"

"भगवान तुम्हारा सकट टाले।" रानी ने सावित्री को अपने गले से लगा लिया।

थोडी ही देर में पवित्र वन फिर अपनी पुरानी स्थिति में आ गया।

एकदम सूना सूना।

एक कुटिया में आज फूलों की गंध थी। दूसरी में सत्यवान के मां-बाप सो गए थे।

सावित्री अभी अभी सास के पांव दबा कर आयी थी। उसका चेहरा विवाह के हवन के धुएं में दपदपा रहा था।

सत्यवान कुटिया के बाहर एक चट्टान पर बैठा था। पास ही नदी बह रही थी। वह इतनी शांत थी जैसे वह भी नींद में सो गयी है। चांदनी चमक रही थी।

सावित्री ने सत्यवान के पास जाकर उसे चौंकाया। सत्यवान सावित्री को मुग्ध भाव से देखने लगा।

"क्या देख रहे हैं नाथ ?"

"देख रहा हूं कि इस जगल में मगल कराने वाली तुम कितनी सुन्दर हो ? तुम्हारे अग-अग से मद सा झर रहा है। सावित्री।"

"हां नाथ।" सावित्री उसके चरणों में बैठ गयी।

"तुमने एक वनवासी से विवाह क्यों किया ?"

"नाथ ! मैंने आपको अपना वर सोच-समझकर चुना है। मैं

आपकी सरलता शालीनता और करुणा से मुग्ध हो गयी थी।

सच तो यह है कि आपको मैंने जैसे ही देखा, वैसे ही मेरे मन मे आपको अपना पति बनाने की इच्छा जाग गयी। प्रेम के झरने फूट पड़े। हृदय मे आपकी छवि मँढ गयी।

"पर तुम्हें तो बडे राजा व राजकुमार मिल सकते थे?" सत्यवान ने कहा।

"पर मुझे सत्यवान कैसे मिलता?"

"ओह, सावित्री!"

"हाँ स्वामी!" सावित्री ने सत्यवान का हाथ अपने हाथ मे लेकर कहा।

इस बार सत्यवान ने सावित्री को ध्यान से देखा तो चौंक पडा, "अरे! तुमने अपने गहने और राजसी वस्त्र कहाँ रख दिये?"

"सन्दूक मे।"

"क्यो?"

"जिसका पति ऋषि का जीवन जीता है, उसकी पत्नी भला कैसे राजसी वस्त्र पहन सकती है।"

"ओह, सावित्री, चलो कुटिया मे चलें।"

दोनो कुटिया मे चले गये।

सावित्री को नारद की बात याद थी। वह जानती थीं कि उसके सुहाग और सुख का पूरा एक साल भी नहीं है। धीरे-धीरे एक-एक दिन और रात उसके साल को छोटा कर रही है। सावित्री इससे विचलित जरूर होती थी। वह जानती थी कि वह निष्ठा से पतिव्रता का धर्म पालन करेगी। वह होनी को अपने पातिव्रत धर्म से बदलने की कोशिश करेगी।

रात दिन पतिभक्ति और सास-ससुर की सेवा!

सावित्री सादगी से जीती थी। हिंसा से दूर रहती थी। रात-

दिन वह समय मिलने पर तपस्या करती थी।

जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, वैसे-वैसे उसे नारद की बात विचलित कर रही थी।

वह पति के साथ अधिक रहने लगी यहा तक कि कभी कभी तो वह बहुत विचलित और निर्बल हो जाती थी। उसकी आँखो मे अश्रुधारा वह जाती थी।

एक दिन सत्यवान ने पूछा, 'सावित्री! इधर तुम बहुत उदास लग रही हो? मैं पूछ सकता हूँ कि तुम्हे कोई कष्ट है?'

"स्वामी! कष्ट हो तो जीवन है! बुद्धिमान लोग कष्ट को कहते नही, सह लेते हैं।"

'मैं पति हूँ। एक पति को अपनी पत्नी के कष्टों के बारे म पूछना जरूरी है।"

'हाँ स्वामी!'

सावित्री उसे यह नही बताना चाहती थी कि मेरे सत्यवान, समय कम है!

आखिर वह दिन एकदम नजदीक आ गया!

सावित्री ने ऊपर से अपने आपको बहुत ही खुश और शात दिखलाया पर उसके भीतर आग सी जल रही थी। उसे देखकर लगता था कि वह एक ऐसी धीर-गम्भीर और शात नदी है जिसके नीचे भयकर हलचल है!

उसने सोचा, सिर्फ पाँच दिन बाकी है।

आज से ठीक पाँचवें दिन उसके प्राणप्रिय पति की मृत्यु हो जायेगी! ऐसी स्थिति मे वह अपने पति के लिए पति धर्म का वास्ता देकर व्रत रखेगी और अन्न-जल ग्रहण नही करेगी!

यदि वह सती है, यदि उसने एक पल पति परमेश्वर के अलावा किसी का ध्यान नही किया है तो ईश्वर उसके पति की रक्षा करेगा।

उसने सोचा कि पति-धर्म की महिमा के सामने देवाधिदेवा को झुकना पड़ा है।

उसने अपने व्रत की घोषणा कर दी। सबसे पहले उसने सत्यवान के चरण छूए और कहा, "आप मेरे ईश्वर है। मैं तीन दिन का उपवास रखूंगी।"

"यह उपवास कठिन है सावित्री।"

'आप आज्ञा दे दीजिए। पति की आज्ञा से सब सरल हो जाता है।"

'मैं शुभ काम म बाधा नही डालूगा।" सत्यवान ने सावित्री को अपनेपन से देखा।

"फिर मेरा व्रत सफल होगा।"

जब सत्यवान के माता पिता ने इस कठोर व्रत के बारे मे सुना तो वे बडे दुखी हुए। उन्होने सावित्री को बुलाया।

सावित्री उनके चरण छूकर खडी हो गयी। बोली "आज्ञा दीजिए पिताजी!"

'बेटी! मैंने सुना है कि तू तीन दिन और तीन रात अन्न-जल ग्रहण नही करेगी।"

"हाँ पिताजी।"

'बेटी! धर्म के काम म बाधा डालना अधर्म है। फिर भी हमारा कर्तव्य है अपने से छोटो को समझाना। बेटी! यह व्रत बडा ही कठिन है।"

सावित्री ने कहा, 'पिताजी! आप जरा भी सोच न करें। मैंने जो निर्णय लिया है, वह काफी सोच-समझ कर लिया है। जब प्राणी मे दृढ सकल्प हो तो सारे काय पूरे हो जाते हैं। मैं इस व्रत को सरलता से पूरा कर लूगी।"

द्युमत्सेन ने कहा, "तुम अपने व्रत मे सफल हो। उसमे किसी तरह की बाधा न पडे। कोई विघ्न न हो?"

'प्रणाम पिताजी।"

"अखण्ड सौभाग्यवती हो।"

"प्रणाम माताजी।"

सत्यवान की माँ ने कहा, 'बेटी! तुम सदा अपने पति की सेवा करो। अपने धर्म का पालन करो। तुम्हारा यह व्रत पूरा हो। तुम्हारा यश चारों ओर फैले।"

सावित्री को लगा कि सभी उसे सुहागिन का आशीर्वाद दे रहे हैं। उसका व्रत अवश्य सफल होगा।

सावित्री ने तीन दिन और तीन रात व्रत किया। उसने अपने ध्यान में सावित्री देवी को याद किया। उसका ध्यान किया। उस व्रत से उसे दिव्यता मिली।

जिस दिन सत्यवान की मृत्यु का दिन था, उस दिन उसने हवन किया।

फिर वह पवित्र वन में घूमी। सबसे पहले उसने अपने पति सत्यवान के दर्शन किये।

सत्यवान ने सावित्री के सिर पर हाथ रख कर कहा, 'तुम्हारा व्रत पूरा हुआ। यह व्रत बहुत कठिन था। तुम्हारी मनोकामना अवश्य ही पूरी होगी।"

"स्वामी! आप अत्यन्त ही सेवाव्रती हैं। माता पिता की सेवा में बेजोड़ हैं। ऐसे दयालु और धर्मपालक की आशीष कभी भी खाली नहीं जायेगी।"

इसके बाद सावित्री अपने सास ससुर के पास गयी। आशीर्वाद लिया। फिर उसने पवित्र वन में रहनेवाले ऋषि-मुनियों से आशीर्वाद लिया।

सभी ने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया।

सावित्री ने सबके आशीर्वाद को हाथ जोड़ कर माना। उसने हर आशीर्वाद पाने के बाद सोचा, "ऐसा ही हो।"

सब के चले जाने के बाद ससुर ने कहा, "तुम्हारा व्रत पूरा हुआ। अब तुम भोजन कर लो।"

"पिताजी! मैं सूर्य के डूबने पर ही भोजन करूँगी। यही मेरा निर्णय है।"

सहसा उसे नारद की बात ने उदास कर दिया। उसके भीतर काँटे चुभने लगे। वह पीड़ा से भर-भर आयी—हाय! आज उसके पति के जीवन का अंतिम दिन है। आज उसका सुहाग उजड़ जायेगा। उसके जीवन का सूर्य डूब जायेगा। उसकी रात में कभी भी चन्द्रमा नहीं उगेगा। जिसका पति मर जाता है—वह तो दीपक का प्रकाश भी नहीं देखती। प्रभु! यह कैसा न्याय है। क्या इतने महात्माओं के आशीर्वाद का कोई फल नहीं निकलेगा?

वह दुख में पागल-सी हो गयी।

तभी उसने अपने पति को लकड़ी काटने वाला 'फरसा' लेकर जाते देखा।

सावित्री ने झट से पूछा, "कहाँ जा रहे हैं आप?"

"मैं लकड़ी काट कर लाता हूँ ताकि रात का भोजन आसानी से बन सके।"

"आज मैं भी आपके साथ चलती हूँ।"

"क्यों?"

"ऐसे ही! आज मेरी इच्छा आपको छोड़ने की नहीं हो रही है।" सावित्री ने कहा।

"नहीं सावित्री! तुमने तीन दिन और, तीन रात का व्रत रखा है। बहुत कमजोर हो। ऐसी दशा में तुम्हारा चलना ठीक नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "मुझमें जरा भी थकान नहीं है। क्या आप मेरी यह छोटी-सी इच्छा पूरी नहीं करेंगे?"

"मुझे कोई भी आपत्ति नही है पर मेरे साथ चलने के लिए तुम्हे माता-पिता से आज्ञा लेनी पडगी।"

सत्यवान की बात सुनकर सावित्री अपने सास-ससुर क पास गयी। उन्ह प्रणाम करके कहा, "आपके पुत्र लकडी काटने जा रहे है। मैं भी इनके साथ जाना चाहती हूँ।"

"पर आज ऐसा क्यो ?"

"न जाने क्यो आज मेरा मन इनका एक पल का भी विछोह सहने को तैयार नही है। आप मुझे आज्ञा दीजिए।"

सत्यवान की माँ ने मुसकराकर कहा, "अच्छा अच्छा, हम तुम्हारी इतनी इच्छा तो अवश्य पूरी करेंगे। जाओ बेटी।"

"हम तुम्हे मना भी नही करग। तुमने यहा आने के बाद पहली बार यह इच्छा प्रकट की है। कभी अपने पति के साथ गयी भी नही। जाओ बेटी जाओ।" राजा ने भी कहा।

द्यूमत्सेन ने सावित्री को आज्ञा दे दी।

सावित्री ने पहली बार वन को भीतर से देखा था। हरी-भरी घाटियाँ। तरह-तरह के फूल। कोयलो की मधुर तान सुनायी पडती थी। एक ओर मोर नाच रहे थे। वे बहुत प्यारे लग रहे थे।

सावित्री ने सत्यवान का हाथ पकडकर कहा, "नाथ! यह वन कितना सुन्दर है। इन पशु-पक्षियो ने तो इसकी सुन्दरता को बहुत ही बढा दिया है।"

"हा सावित्री! वन की शोभा तो जगली जानवर, रग-बिरगे फूल पौधे, पेड और मन को मोहने वाले पक्षी होते हैं। इसलिए ही तो इन सब की रक्षा करना मनुष्य का धर्म है।"

सावित्री ने अपने भीतर की चिन्ता को दबाकर कहा, "और फलो की तो महिमा ही न्यारी है। यहाँ तो कितने स्वादिष्ट

फल हैं।"

"तुम इनसे टोकरी भर लो।"

दोनों ने फलों को तोडकर टोकरी भर ली।

सत्यवान ने कहा, "उस पहाडो के पीछे सूखे पेड हैं। हमें वही जाकर लकडियाँ काटनी होगी। हरा पेड काटना पाप कहलाता है।"

"नही, मैं भी आपके साथ चलूगी।"

"अरे! वह विकट वन है।"

"नही, मैं साथ चलूंगी।"

"चलो।"

दोनो साथ साथ चले।

वहा पहुच कर सत्यवान ने लकडी काटना शुरु कर दिया।

लकडी काटते-काटते सत्यवान को पसीना आ गया। उसके सिर मे भयकर दर्द होने लगा। उसे लगा कि जैसे उसके शरीर मे दम ही नही है। वह पीडा से तडपने लगा।

वह सावित्री के पास आया। उसके उतरे हुए मुँह को देखकर सावित्री ने कहा, "क्या बात है स्वामी?"

सत्यवान ने बुझ हुए स्वर मे कहा, 'सावित्री! मेरे सिर मे भयकर पीडा हो रही है। हृदय मे भी शूल-सी चुभ रही हैं। अग मानो टूट रहे हैं।"

सावित्री का दिल बैठ गया। उसने सोचा कि मेरे पति की अतिम घडी आ रही है!

सत्यवान ने उसकी गोद मे अपना सिर रख दिया। वह धीमे धीमे बोला, "सावित्री! सिर मे कोई भालो की चोटें मार रहा है।"

"आप साहस रखें, मैं आपका सिर दबाती हूँ। भगवान सब अच्छा ही करेंगे।"

"ओह   हाय   सिर फटा जा रहा है ?"

गावित्री ने धैर्य नही छोडा । वह बार बार सावित्री देवी माँ से प्रार्थना कर रही थी—माँ, 'मेरे सुहाग की रक्षा करना।'

मृत्यु का समय टलता नही है ।

उसी पल भयकर गर्जना हुई ।

सावित्री ने सत्यवान को पकड लिया।

लाल कपडे, सिर पर मुकुट, तेजवान, काला रग, अगारा की तरह आंख   हाथ मे लम्बी रस्सी लिए एक डरावना पुरुष खडा था ।

वह सत्यवान को घूर-घूर कर देख रहा था ।

सावित्री ने अपनी पतिभक्ति के बल पर उस भयकर आकृति को देख लिया । पति को छोडकर वह उसके पास पहुँची। बोली "मैं समझती हूँ कि आप कोई देवता हैं। देवश ! आप कौन है ?"

'देवी ! तुम महान पतिव्रता और तपस्विनी हो। सदा सत्य पर चलती हो, ऐसी स्थिति मे मैं अपने को तुमसे छुपा नही सकता । देवी ! मैं यम हू ।"

"मैं यमराज को प्रणाम करती हू ।"

"तुम्हारे पति सत्यवान का आयु खत्म हो गयी है ! मैं उसे बाधकर ले जाने आया हू । तुम मुझ इसे ले जान दो।"

"भगवन् ! मैंने तो सुना था कि मनुष्य को लेने के लिए आपके दूत आते हैं, किन्तु आप स्वय क्यो आय ?"

"सावित्री ! तुम्हारा पति सत्यवान सच्चा धर्मात्मा और पिता माता का भक्त है अत मैं इसे लेने आया हूँ। यह मर गया है।"

यमराज उसे बाँध कर दक्षिण का आर चल । पतिव्रता सावित्री ने उसका पीछा किया।

यमराज ने कहा, "सावित्री ! कहाँ चल रही हो ? तुम लौट कर इसके शरीर का दाह-संस्कार करो ताकि उसकी मुक्ति हो।"

"नही धमराज ! मैं तो वही जाऊँगी जहाँ मेरा पति जायेगा। यही मरा पातिव्रत धम है। मैं अपनी सारी भक्ति और शक्ति के वल से आपके साथ चलूगी। मुझ कोई रोक नही सकता।"

"मान जाओ सावित्री !"

"भगवन् ! बुद्धिमानो ने कहा है कि कोई सात पग भी साथ चल ले, वह मित्र हो जाता है ! मैं उसी मित्रता के आधार पर कुछ कहना चाहती हूँ ?"

"सावित्री ! मैं तुम्हारी वाणी से प्रसन्न हूँ। तुम सत्यवान के प्राणो के सिवाय कोई वर माँग सकती हो ! फिर तुम्हे लौट जाना पड़ेगा।'

'देवेश ! राज्य से निकाल दिये जाने पर मेरे अंधे सास-ससुर वनवास भोग रहे हैं। वे अपनी आँखो की ज्योति वापस प्राप्त करें।'

"सावित्री, ऐसा ही होगा। तुम्हारे सास ससुर आज से देखने लगेंगे। अरे ! सावित्री तुम थक गयी हो, वापस लौट जाओ।"

"नही देवेश जहा मेरा पति है वही मेरी गति है ! मैं आपका साथ नही छोड़ूगी।" मेरी बात सुनिए—मैंने सज्जन पुरुष का साथ किया है। सज्जन पुरुषो का साथ सदा ही फल-दायक होता है। आप सज्जन हैं, क्या आपके साथ का मुझे फल नही मिलेगा ?"

"तुम्हारी वाणी बहुत ही अच्छी है पर सावित्री, अपने पति के प्राणो के अलावा तुम कोई वर माँग लो।"

'मेरे श्वसुर का राज्य उन्हें वापस मिल जाय।"

"ऐसा ही होगा। अब तुम चली जाओ।"

"नहीं, मैं आपके साथ चलूँगी। आप सज्जन हैं। आपकी शरण में यदि शत्रु भी आ जाय तो आप उस पर कृपा करते हैं।"

'तुम्हारी बात मधुर है। माँगो, सत्यवान के प्राणों के अलावा कोई भी वर मागो।"

'मेरे पिता सन्तानहीन हैं, उन्हें सौ पुत्र दीजिए, मैं यह तीसरा वरदान माँगती हूँ।

'ऐसा ही होगा। तुम्हारे पिता के सौ पुत्र होंगे। सावित्री! अब तो लौट जाओ। तुम मृत्यु लोक से बहुत दूर चली आयी हो?"

सावित्री ने सिर हिला कर कहा, "नहीं कदापि नहीं। एक पतिव्रता के लिए पति के निकट रहने से बड़ा कोई धर्म नहीं है। मेरे पति आपके साथ हैं। देवेश! आप सूर्य के प्रतापी पुत्र हैं। आप सबके साथ सही न्याय करते हैं इसीलिए आप धर्मराज कहलाते हैं। मैंने तो आपको मित्र माना है, सज्जन मित्र! आप पर मेरा अखण्ड विश्वास है!"

'अद्भुत वाणी है तुम्हारी। सावित्री! मांगो, सत्यवान के प्राणों के अलावा तुम जो भी वर मांगोगी, वह दूंगा। सुनो, यह चौथा वर माग कर तुम लौट जाओ।'

'महाराज! मेरे सत्यवान से सौ पुत्र हों। यह मेरा चौथा वर है।"

'ऐसा ही होगा। अब तो लौट जाओ। बहुत दूर चली आयी हो!"

नहीं महाराज! आपने मुझे सौ पुत्रों का वरदान दिया है, पर भला देवेश, बिना पति के कोई पत्नी कैसे पुत्र पैदा

करेगी।" सोचिए धमराज मेरे पति को तो आप स्वय ले जा रहे हैं। ऐसी स्थिति मे मैं मां कैसे बनूंगी और आपके वरदान की रक्षा कैसे होगी?"

धर्मराज ने एक आह भरी। बोले, "ओह! तुमने अपनी वाणी की चतुराई से हमे हरा दिया। जाओ, ऐसा ही होगा। तुम्हारा पति वापस जीवित हो जायेगा।"

"धर्मराज! मैं आपको बार-बार प्रणाम करती हूं। आपकी कृपा से मुझे मेरा सुहाग मिल गया।

"हां सावित्री! तुम्हारे कारण ही तुम्हारा पति जीवित हुआ है। अब वह सदा स्वस्थ रहेगा। तुम्हारे साथ चार सौ साल तक जीयेगा। जाओ अब तुम जाओ।"

सावित्री लौट आयी!

उसने अपने पति के सिर को उठाकर ज्योंही गोद मे रखा त्योंही उसका पति ऐसे उठा जैसे वह गहरी नींद मे से जगा हो। उसने सावित्री से कहा, "मैं बहुत सोया! कितनी देर हो गयी है। माता-पिता चिन्ता करते होंगे।"

"इतनी गहरी नींद मे जगाना मैंने ठीक नही समझा। आपके सिर मे भयकर पीडा थी न?"

"ओह! मैंने सपने मे भयकर काला पुरुष देखा। घर जल्दी चलो, मेरे मां बाप मेरे बिना व्याकुल हो रहे होंगे।"

"मैंने यदि सचमुच पति की भक्ति की है तो मेरे सास ससुर को आज की रात कुछ भी न हो। वे पूर्ण स्वस्थ रहें।"

वे सारी रात वन मे भटकते रहे। सुबह जब वे अपने मा बाप के पास पहुचे तो वे बडे ही व्याकुल थे। वे पुत्र से मिलकर रो पडे। उन्होने कहा कि वे अब अच्छी तरह देख सकते हैं। ओह! हमारी बहू सावित्री तो सचमुच मे लक्ष्मी है।"

गौतम आ गये। ब्राह्मण गौतम ने कहा, "सावित्री! कल

क्या-क्या घटा, अपने सास-ससुर और पति को बताओ।"

"जो आज्ञा विप्रवर !" सावित्री ने कहा, "नारद जी ने मुझे बताया था कि मेरे पति की मृत्यु साल भर के बाद हो जायेगी। कल आखिरी दिन था। धमराज स्वयं इन्हें लेने आये। मैंने उनका पीछा किया। उन्होंने मुझे पाँच वर दिये।"

सावित्री ने एक-एक वर का हवाला दिया।

सबने सावित्री की प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद दिया।

समय के बदलते देर नहीं लगी। राजा द्युमत्सेन को अपना राज्य वापस मिल गया। उसका शत्रु राजा अपने मंत्री के हाथों मारा गया। तब उसकी सेना भाग गयी।

द्युमत्सेन ने अपना राज्य पाया। अश्वपति के भी सौ पुत्र हुए।

सावित्री की पतिभक्ति के कारण दोनों कुलों का कल्याण हो गया।

शकुन्तला

राजर्षि विश्वामित्र अत्यन्त ही तेजस्वी तपस्वी थे। उनके चमत्कारों और सिद्धियों से सारा संसार चकित था।

एक बार वे वन में घोर तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या को देखकर राजा इन्द्र भयभीत हो गए।

जैसा इन्द्रदेव सोचते रहते थे कि पृथ्वी पर जो भी तप-तपस्या होती है वह उनका स्वर्ग का सिंहासन छीनने के लिए होती है।

देवाधिदेव इन्द्र ने यही सोचा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे महर्षि विश्वामित्र की तपस्या भंग हो जाय।

लम्बे समय तक सोचने विचारने के पश्चात इन्द्र ने अपनी विशेष अप्सरा मेनका को बुलाया।

मेनका अद्वितीय सुंदरी थी। उसे देखकर देव, दानव, यक्ष-किन्नर, प्राणी सबके सब मुग्ध हो जाते थे।

मेनका ने हाथ जोड़कर कहा, "क्या आज्ञा है देवाधिदेव ?"

"मेनका ! हम पर भीषण संकट आन पड़ा है। हमारा सिंहासन डोलने वाला है।"

"महाराज !" मेनका ने विनम्र स्वर में कहा, "मैं आपके संकट निवारण के लिए अपने प्राण भी बलिदान कर सकती हूँ। हमारा अस्तित्व तो आपके साथ है।"

"मुझे तुमसे यही आशा थी।"

"कहिए महाराज, आपकी मुझे क्या आज्ञा है ?"

भगवान् इन्द्र ने मेनका की ओर देखते हुए कहा, "मेनका! महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या कर रहे हैं। वे तपस्या क्यों कर रहे हैं। उसका कारण मैं जानता हूँ। वे अपनी तपस्या से ऐसी सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं जिससे वे हमारी स्वर्ग की सत्ता को हथिया सकें।'

ओह !" मेनका ने एक आह छोड़ी।

'इसलिए तुम्हें हमारा सिंहासन बचाने के लिए हमारी सहायता करनी होगी।'

मेनका ने इन्द्र की चरण धूलि लेकर कहा, "मेरे स्वामी! आप मेरे प्रति सहायता शब्द का प्रयोग करके मुझे लज्जित मत कीजिए। मैं तो आपकी दासी हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए।"

इन्द्र ने प्रसन्नता प्रकट करके कहा, "मेनका! तुम तीन लोकों में सबसे सुन्दर हो। तुम्हारे यौवन के कुसुमों की गंध कठोर से कठोर तपस्या को खंडित करने की क्षमता रखती है। तुम्हारी अनुपम शास्त्रीय नृत्य कला सम्मोहन का जादू बिखेर सकती है तुम्हारे कण्ठ स्वर से निकली राग-रागिनियाँ समाधियाँ भंग कर सकती हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम पृथ्वी लोक में जाकर विश्वामित्र की तपस्या को भंग करके हमें संकट से उबारो।'

मेनका ने सिर झुकाकर कहा, "जो आज्ञा प्रभु !"

मेनका अपने स्वजनों-परिजनों से विदा लेकर विमान द्वारा धरती पर उस जगह आ गई जिस सुरम्य वन में महर्षि विश्वामित्र अखंड तपस्या कर रहे थे।

वह स्थान दर्शनीय था। मेनका ने सबसे पहले सारे वन का निरीक्षण किया। फिर उसने कामदेव को स्मरण किया। कहा, 'हे अनंग! आप अपनी शक्ति से इस वन के चप्पे-चप्पे में अलौकिक प्रकृति की छटा और मद भर दें।"

थोड़ी ही देर मे वह स्थल मिलन-स्थल-सा वन गया।

मेनका ने अपने प्रभाव से महर्षि विश्वामित्र की तपोभूमि के आगे एक सुगन्धित फूलो की चौकी बनाई। फिर वह नृत्य-गीत से विश्वामित्र के तप को भग करने के तरह-तरह के प्रयास करने लगी।

अत मे मेनका सफल हो गई।

विश्वामित्र की तपस्या भग हो गई।

जब उन्होने अपनी आँखें खोली तब अपने सामने सौन्दय की प्रतिमा को पाकर महर्षि उस पर मुग्ध हो गये। त्याग, तप और ब्रह्मचर्य की दीवारें ढह गयी।

वे मेनका के प्रम-राग मे डूब गये।

"मेनका!"

'क्या है महर्षि ?"

'समय जाते पता ही नही चलता।"

"हाँ, महर्षि!"

'मैं तुम्हारे प्रेम मे पागल हो गया। अपना तप, धम और नैतिकता को छोड कर मैं तुम्हारे रग-रूप के सागर मे आकठ डूब गया।"

मेनका ने मुस्कराकर कहा, "महाराज! आपको एक शुभ समाचार सुनाऊँ?"

"सुनाओ।"

मेनका लज्जा से लाल हो गयी। वह सहम कर बोली, "मैं आपकी सन्तान की माँ बनने वाली हू।"

महर्षि विश्वामित्र को लगा कि एकाएक कोई चट्टान का टुकड़ा उनके सिर पर आ गिरा है। आँखें विस्फारित हो गयी। तन मे जडता आ गयी।

कुछ देर उनसे बोला नहीं गया। बड़ी कठिनता से वे बोले, "क्या यह सही है मेनका ?"

"ऋषिवर ! आप तो लोक-परलोक की बातें जानते हैं। आप अपनी दिव्य दृष्टि से पृथ्वी, जल-थल में कहीं भी कोई वस्तु है, उसे देख सकते हैं, फिर क्या आप यह नहीं जानते कि मैं आपकी सन्तान की माँ बनने जा रही हूँ ?"

विश्वामित्र के सिर से वासना का भूत उतर गया था। उन्हें अपने आप से घृणा होने लगी। वितृष्णा का सागर उनके तन मन को डुबोने लगा। बार-बार वे अपने को धिक्कारने लगे। पश्चाताप की आग में उनका हृदय दग्ध होने लगा।

आप गम्भीर कैसे हो गये महर्षि !" मेनका ने उनका हाथ स्पर्श करके कहा।

' मैं कितना बड़ा पापी हूँ !"

'आपने कोई पाप नहीं किया। प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रिया को आप पाप कहते हैं ? नहीं महर्षि नहीं।"

"तुम क्या जानो, मेरे इस काम के लिए मुझे कितना कलंकित और दुर्बल कहलाना पड़ेगा। पृथ्वी पर मेरी जग-हँसाई होगी मैं जाता हूँ मेनका।"

"कहाँ ?"

"तपस्या करने।"

"मुझे ऐसी दशा में छोड़कर [illegible] जाते [illegible] कितने कष्टों से गुजरती है, महर्षि, [illegible]

पर विश्वामित्र ने मेनका [illegible]

अनेक प्रार्थनाएँ की पर कोई [illegible]

विश्वामित्र अज्ञातवास की [illegible]

[illegible]

दिया।

पुत्री के जन्म के बाद मेनका भी उतनी ही निमम निकली, जितने विश्वामित्र।

वह वन मे उस नवजात बच्ची को पशु-पक्षियो के हवाले करके बोली, "हे वन के पशु-पक्षियो, मैं अपने स्वामी का कत्तव्य पालन करके जा रही हू। आप इसकी रक्षा करना।"

मेनका स्वग-लोक चली गयी।

फल सी कोमल बच्ची वन मे लता की छत्रछाया म पडी रही। फूलो का बिछौना। वृक्ष का साया।

बच्ची रोने लगी।

उसे रोते देखकर पक्षी आ गये और अपनी मधुर वाणी से उसे बहलाने लगे। पक्षी यानी शकुन्तो ने उसे घेर लिया।

उसी समय महर्षि कण्व अपने शिष्यो के साथ उधर घूमते-घूमते आ गय। बच्ची का रोना सुनकर वे उधर बढे। देखा—शकुन्तो से घिरी एक नवजात बच्ची।

महर्षि कण्व चौक पडे। इस तरह आश्रम के वन मे निरीह बच्ची का पाना उन्हे मानवीय गरिमा के प्रतिकूल लगा।

उन्होने उस नवजात बच्ची को उठा कर अपने शिष्य को सौंपा। कहा, "कौन इतनी कठोर माँ होगी जिसने अपने हृदय के टुकडे को इस तरह फक दिया। कोई भी हो, हमारा धर्म है कि हम उसका पालन पोषण करें।"

महर्षि कण्व उस बच्ची को अपने आश्रम मे ले आये और उसका पालन-पोषण करने लगे।

समय के पख निरन्तर उडते चले गये। महर्षि कण्व ने उस बालिका का नाम शकुन्तला रखा, क्योकि उसे शकुन्तो न पाला था। शकुन्त यानी पक्षी।

वह बालिका बडी होने लगी।

उस समय आर्यावत देश पर राजा दुष्यन्त राज्य करता था वह बडा ही पराक्रमी राजा था। उसके राज्य मे धम, जाति, और रग-भेद को लेकर कोई अन्याय नही होता था। वह जितना शूरवीर था, उतना ही दयालु था। सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्र के समान शीतल स्वभाव वाला राजा दुष्यन्त अपने राज्य मे हर कीमत पर कानून व्यवस्था बनाये रखता था।

एक दिन की बात है।

राजा दुष्यन्त शिकार खेलने के लिए निकला। उसके साथ उसके कई विश्वासी साथी थे। राजा धीरे-धीरे बीहड जगल की ओर बढता गया। उसे एक मृग दिखाई दिया। मृग अत्यन्त आकर्षक व चालाक था। उसे जैसे भान हो गया था कि कोई शिकारी मेरा पीछा कर रहा है। बस वह जानबूझ कर गहरे वृक्षो की ओट मे भागने लगा।

राजा दुष्यन्त अपने तेज भागने वाले घोडे पर सवार था। वह भी जसे दढ निश्चय कर बैठा था कि उस मृग का शिकार करके ही रहेगा।

मृग कभी उसे दिखाई देता था और कभी अदश्य हो जाता था।

इस तरह राजा दुष्यन्त अपने साथियो से बिछुड कर अकेला रह गया। उसने बहुतेरी कोशिश की पर मृग, उसकी आखो से ओझल हो गया।

हताश राजा ने अपना घोडा रोक लिया और इधर उधर देखन लगा।

पर उसे मृग कही पर नजर नही आया।

वह घोडे से नीचे उतरकर एक लघु सरोवर के पास गया।

हाथ-मुंह धोकर सुस्ताया। फिर वह घोड़े को बांध कर आगे बढ़ा।

अब उसे कुटियाएं दिखाई दीं। उसे यह समझते जरा भी देर नहीं लगी कि यह जगह कोई ऋषि-आश्रम है।

अभी वह थोड़ा आगे बढ़ा ही था कि उसे शकुन्तला दिखाई दी। सादे वस्त्रों में वह और भी सुन्दर दिखाई दे रही थी।

राजा देखते ही उस पर मुग्ध हो गया। उसे लगा कि साक्षात अप्सरा उसके सामने खड़ी है। वह मन ही मन उसके रूप की कल्पना करता रहा।

अचानक शकुन्तला की दृष्टि भी राजा दुष्यन्त पर पड़ी। वह पोशाक से ही समझ गयी कि वह कोई प्रतिष्ठित राजा-महाराजा है।

अपने आश्रम में आया जानकर शकुन्तला ने आदर भाव से कहा, "माननीय अतिथि आपका स्वागत है।"

"धन्यवाद! मैं राजा दुष्यन्त हूं।"

शकुन्तला ने कहा, "मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूं?"

"मैं परम तपस्वी महर्षि कण्व के दर्शन करना चाहता हूं। मुझे इनकी तपोभूमि दिखला दीजिए।"

शकुन्तला ने निश्छल भाव से कहा, मान्यवर! मेरे पूजनीय पिताजी अभी आश्रम से बाहर हैं। आप प्रतीक्षा कीजिए, वे आ जायेंगे।

"ओह!" दुष्यन्त ने एक निःश्वास लेकर कहा, "क्या मैं यहां विश्राम कर सकता हूं?"

"अवश्य-अवश्य।" शकुन्तला ने उन्हें बैठने का संकेत करके कहा।

तभी शकुन्तला की सहेलियां आ गयीं। शकुन्तला को एक अपरिचित से बातचीत करते देखकर वे विस्मित रह गयीं।"

एक ने पूछा, "बहिन ! यह तेजस्वी राजकीय पोशाक में कौन महापुरुष है ?'

"सखि ! ये परम प्रतापी राजा दुष्यन्त हैं। महर्षि कण्व के दर्शन करने आये हैं।"

'ओह !" दूसरी सखि ने कंधे उचकाए ।

"क्योंकि महर्षि बाहर हैं अतः ये प्रतीक्षा करेंगे।'

फिर तुम इन्हें आतिथ्य का आनन्द दो। हम फल फूल लेकर आ रही हैं।"

वे मुस्कराती हुई चली गयी।

राजा दुष्यन्त ने पूछा, 'कल्याणी। आप क्या महर्षि की सचमुच कन्या हैं जबकि कण्व तो तेजस्वी ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने तो विवाह भी नहीं किया है।"

शकुन्तला ने अपनी जन्म-कथा को सच-सच बता कर कहा, 'राजन ! यह सब विधि विधान है। फिर भी जनक, रक्षक और पोषक, ये तीनों पिता ही कहलाते है। इस तरह मैं कण्व की पुत्री कहलायी।"

राजा दुष्यन्त ने कुछ देर तक सोचा, सच ही यह ब्राह्मण की बेटी न होकर राजकन्या है । यह मेरी पत्नी होने योग्य है।

अचानक राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला की ओर देखा। दोनों की आखें चार हुईं। दोनों एक-दूसरे को मुग्ध भाव से देखते रहे।

फिर शकुन्तला ने सिर झुका लिया। राजा दुष्यन्त ने स्पष्ट शब्दों मे कहा, 'सुमुखी ! मैं राजा बिना किसी भूमिका के प्रस्ताव करता हूँ कि मैं तुमसे गान्धर्व-विवाह करना चाहता हूँ। यह पद्धति राजाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है।'

शकुन्तला यह प्रस्ताव सुनकर मन-ही मन प्रसन्न हो गयी। फिर भी मर्यादा का ध्यान करके वह बोली, "राजन् ! आप जैसा

धर्मात्मा और यशस्वी राजा मुझे कहा वर के रूप में प्राप्त होगा। फिर भी मेरे पूज्य पिताजा बाहर गये हुए हैं, ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं है।"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे।

एक-दूसरे को देखते रहे। सोचते-विचारते रहे। फिर राजा दुष्यन्त ने कहा "सुमुखि ! यह सही है कि पिता द्वारा ही कन्या-दान होना चाहिए पर गान्धर्व विवाह में उसकी कोई आवश्यकता नहीं होती है। मैं तुम्हें चाहता हूँ और यदि तुम मुझे चाहती हो तो मुझे वरण कर लो।"

शकुन्तला ने सिर झुकाए हुए कहा, "राजन् ! यह सही है कि मैं भी आपको चाहने लगी हूँ । आप जैसा धीर-वीर गंभीर वर किसी आर्य-कन्या को बिना किसी प्रयास के मिल जाय तो उसे सौभाग्यशालिनी समझना चाहिए।

राजा दुष्यन्त ने कहा, "मैं भी तुमसे विवाह करके अपने आपको भाग्यशाली मानता हूँ। वैसे मनुष्य अपना हितैषी स्वयं होता है। अपनी अच्छाई बुराई वह स्वयं देखता है। इसलिए तुम धर्म के अनुसार मुझे सौंप कर अपने दायित्व को पूरा करो।"

शकुन्तला ने आकाश और धरती की ओर देखकर कहा, "यदि मैं अपने को आपको सौंप सकती हूँ तो आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी।"

'कौन सी प्रतिज्ञा ?" राजा चौंका।

शकुन्तला ने गम्भीर स्वर में कहा, "राजन् ! यदि आप मेरे पुत्र को ही सम्राट बनायें तो मैं आपसे गान्धर्व विवाह कर सकती हूँ।"

राजा दुष्यन्त तो उस लक्ष्मीस्वरूपा शकुन्तला पर बहुत ही आसक्त था। उसने तुरन्त ही कह दिया—' मैं तुम्हें वचन देता हूँ

कि मैं तुम्हारे बेटे को ही अपना युवराज बनाऊँगा। उसे ही अपना साम्राज्य सौपूंगा।"

बस दोनो ने बिना गम्भीरता से सोच समझे गाधव विवाह कर लिया।

राजा दुष्यन्त शकुन्तला के प्रेम में खो गया। फिर उसने प्रतिज्ञा करके अपनी राजधानी लौट आने लगा।

शकुन्तला सुबक सुबक कर रो पडी।

उसने कहा, "स्वामी! आप मुझे तुरन्त आकर ले जाइए। मैं आपके वियोग को सह नही पाऊँगी।"

राजा ने विश्वासपूर्ण स्वर में कहा, "शकुन्तला! मैं तुम्हें लेने के लिए स्वय आऊँगा। तुम्हे राजसी वैभव के साथ ले जाऊँगा।'

राजा दुष्यन्त उसे भाँति भाँति की दिलाशाए देकर चल पडा। जाने से पहले उसने उसे अपनी अँगूठी दी। कहा, 'यह मेरी राजकीय अँगूठी है। इसके कारण तू उतनी ही गरिमामय हो गयी जितना मैं हूँ।'

शकुन्तला बेचैन और दुखी हो गयी।

उसे रह रह कर यह आशका उठती थी कि कही राजा नही आया तो? उसके पिताश्री क्या कहेंगे?

उसकी आँख बार-बार भर आती थी।

ठीक समय पर कण्व मुनि लौट आये। शकुन्तला मारे लाज के उनके सामने नही गयी। उसे बार-बार लगा कि उससे कोई भयानक गलती हो गयी है। कोई अपराध हो गया है।

वह अपने पिता से आँखे चुराने लगी। कण्व मुनि समझ गये कि कोई दाल मे काला है।

उन्होने शकुन्तला की खास सहेली अनसूइया को बुलाकर

पूछा, "क्या बात है बेटी ? आने के बाद शकुन्तला मुँह चुराकर क्यों बैठी है ? वह हमसे मिली भी नहीं।"

अनसूइया तुरन्त शकुन्तला को बुला कर लायी।

शकुन्तला ने सारी बातें बता कर कहा, "मुझसे अपराध हो गया है पिताश्री। मैं इस भूल के लिए आपसे क्षमा चाहती हूं।"

मुनि कण्व ने कहा, 'नहीं बेटी ! सही तो यह है कि वर का चुनाव लड़की को ही करना चाहिए। फिर तुमने तो राजा दुष्यन्त से विवाह किया है। राजा दुष्यन्त महान पराक्रमी धर्मात्मा और श्रेष्ठ पुरुष है। क्षत्रियों के लिए गान्धर्व-विवाह शास्त्र-सम्मत है। बेटी ! मैं भविष्य को देख रहा हूँ। तुम दोनों का एक अत्यत ही बलशाली बेटा होगा। वह सारे आर्यावर्त का राजा होगा, दिग्विजयी होगा और उसकी कीर्ति का ध्वज समस्त भूमंडल पर फहरायेगा।"

शकुंतला ने कण्व मुनि के चरणों में लेटकर विनीत भाव से कहा "आप नर रूप में नारायण हैं। आपके उदार वचनों को सुनकर मेरे मन की सारी दुविधाएँ खत्म हो गयी हैं।"

कण्व मुनि अपने कार्य में व्यस्त हो गये।

शकुंतला राजा दुष्यन्त की याद में पागल सी हो गयी। हर सुबह जब सूर्य की पवित्र किरणें पृथ्वी पर अवतरित होती थीं तब वह राजा दुष्यन्त की प्रतीक्षा करती और सूर्य के डूबने पर वह उदास होकर अपनी पर्ण-कुटिया में चली जाती थी।

दिन तो दिन, कई माह बीत गये।

राजा दुष्यन्त गया तो वापस लौटकर नहीं आया।

शकुन्तला को लगा कि क्या राजा ने उसके साथ कपट किया है ? क्या राजा लोभी भंवरे की तरह उसका यौवन-रस पीकर

उडगया है। उसकी चिंता और गहरी हो गयी जब उसे पता चला कि वह गर्भ से है । उसके पेट मे राजा दुष्यन्त का अंश पल रहा है।

ओह ! उसके भाग्य मे क्या लिखा है ? क्या वह दुर्भाग्य के झूले मे झूलती रहेगी ? उसने यह भी सोचा कि वह इन सभी घटनाओ का दोष किसे दे ? उसी के मन के अनुसार सब कुछ हुआ है, फिर वह किसे अपनी दुख की गाथा सुनाए ? किसे कहे कि कोई राजा दुष्यन्त के पास जाकर उसे कहे कि वह उसे आकर ले जाए। यदि राजा नही आया तो वह अभागा क्या सारी उम्र पिता के घर पडी रहेगी ? उसकी होने वाली संतान क्या वनचरो की तरह जिएगी ?

वह इसी उधेडबुन मे डूबी हुई थी कि उसकी कुटिया के आगे महर्षि दुर्वासा आ गये। दुर्वासा ने शकुन्तला की ओर देखकर कहा, "मां, भिक्षा दे । मां, भिक्षा दे मा, भिक्षा दे "

शकुन्तला दुष्यन्त की याद मे खोई थी। उसे दुर्वासा जी के आने का ध्यान नही रहा । अपने जीवन के अधेरो के बारे मे वह सोच रही थी। वस्तुत वह चिन्ताओ के सागर मे डूबी हुई थी।

दुर्वासा मुनि ने फिर पुकारा, "मां ! भिक्षा दे।'

शकुन्तला ने उसकी पुकार को नही सुना। वह अपने आप मे खोयी रही।

दुर्वासा मुनि ने इसे अपमान समझा। वैसे ही क्रोध के पर्यायवाची हैं दुर्वासा। क्रोध का दूसरा नाम दुर्वासा है।

मुनि का मन क्रोध से भर गया। उन्होने कमण्डल मे से जल निकालकर चल्लू मे भरा। आंखो को लाल करते हुए वे शाप दे बैठे, तूने मेरा अपमान किया है, जा, तू जिसको स्मृति मे खोयी बैठी है, वह तुझे भूल जायेगा।"

शाप लगते ही शकुन्तला की चेतना लौट आयी।

उसने देखा कि सामने महर्षि दुर्वासा खड़े हैं। वह काँप उठी। उसे अपनी भूल का अहसास हुआ। वह क्षमा क्षमा क्षमा करके दुर्वासा के चरणों मे गिर पड़ी। रोकर बोली, "मुनिवर! मुझ हतभागिनी को इतना भयकर शाप मत दीजिए। मुझे क्षमा कर दीजिए दयानिधान!"

जब शकुन्तला करुण क्रन्दन करने लगी तो दुर्वासा का क्रोध उतरा। हृदय मे दया के अकुर फूटे। वे बोले, "देवी! मैंने जो शाप दे दिया वह झूठा नही होगा पर कालान्तर तुम्हे वह वापस मिल जायेगा, जिसकी स्मृति में तू खोयी हुई थी।"

शकुन्तला के जी मे जी आया।

दुर्वासा मुनि चले गए।

शकुन्तला फिर राजा दुष्यन्त की स्मृतियो में खो गयी।

राजा दुष्यन्त नही आया।

इधर कण्व मुनि को जब यह मालूम पड़ा कि शकुन्तला माँ बनने वाली है तब वे जरा व्यग्र हो उठे। उन्होने सोचा कि राजा दुष्यन्त अत्यन्त ही धर्मात्मा राजा हैं पर मेरी बेटी को लेने के लिए क्यो नही आये? वैसे राजा दुष्यन्त की याद में शकुतला इतनी डूब गयी थी, कि महर्षि दुर्वासा ने उसे शाप भी दिया था, यह भी भूल गयी।

इन्ही सभी बातो को सोचकर मुनि कण्व ने शकुन्तला को उसकी ससुराल भेजना तय कर दिया।

उन्होने अपने दो शिष्यो को बुलाकर कहा, "तुम दोनो मेरी बेटी को उसकी ससुराल राजा दुष्यन्त के पास ले चलो।"

जब शकुन्तला को यह पता चला कि उसे ससुराल भेजा जा रहा है तो वह व्याकुल हो उठी। आश्रम को इस तरह छोड़ते

हुए तथा अपनी ससुराल बिना बुलावे के जाना, उसे बहुत ही खेदजनक लगा। उसने कण्व मुनि से कहा "पिताश्री! क्या किसी भी लड़की का बिना बुलाए पहली बार ससुराल जाना उचित है?"

कण्व मुनि ने कहा, "नहीं, पर तुम माँ बनने वाली हो ऐसी स्थिति में इन सभी बातों की जानकारी तुम्हारे ससुराल वालों को होना जरूरी है। बेटी! तुम्हें अपनी ससुराल तो जाना ही है।"

शकुन्तला अपने पिता के सामने क्या कहती। उसने ससुराल जाना स्वीकार कर लिया।

कण्व मुनि शकुन्तला के वियोग की सोच कर विगलित हो उठे। उनकी आँखें भर आयीं। शकुन्तला की सहेलियाँ रोने लगीं। उसका पाला हुआ हिरन भी आँसू बहाने लगा। शकुन्तला ने कितनी ही बेल उगायी थी। वह उनसे लिपट कर बिलख उठी। अत्यन्त ही करुणा भरा दृश्य था।

ऐसा लग रहा था जैसे आश्रम के सारे प्राणी उदास हैं।

शकुन्तला जाते-जाते एक बार फिर बिलख उठी। उसने जोर से कहा "हे वन के प्राणियो व पक्षियो! मैं आपसे विदा ले रही हूँ। मुझसे कोई भी गलती हुई तो क्षमा करना।"

शकुन्तला इस तरह कण्व मुनि के आश्रम से विदा हो गयी।

राजा दुष्यन्त दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को वास्तव में भूल गया। उसे याद ही नहीं रहा कि कभी उसने एक वनकन्या से मात्र गान्धर्व-विवाह भी किया था। किसी के नारीत्व और सतीत्व को वरण किया था।

वह तो अपने राजकाजों व भोग-विलास में डूब गया।

उस दिन राजा दुष्यन्त का दरबार लगा था। उसके राज

पुरोहित मत्री एव कई बड सरदार दरबार मे बैठे थे।

तभी दरबान ने आकर कहा, "महाराजा की जय हो। दो तपस्वी और एक युवती आपसे मिलना चाहते है।"

"उन्हे दरबार मे सम्मान के साथ लाया जाय।"

थोडी दर मे शकुन्तला और कण्व मुनि के दो शिष्य उपस्थित हुए। शकुन्तला ने जरा सा घूघट निकाल रखा था।

राजा ने कहा, "तपस्वीजन ! आपने मेरे दरबार मे आने का कष्ट कैसे किया ? मेरे लिए कोई सेवा कहिए। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।"

एक तपस्वी ने आशीर्वाद देकर कहा, "हे राजाओ मे श्रेष्ठ राजा हम कण्व मनि के शिष्य हैं और उनकी आज्ञा से आपको अपनी धरोहर सौंपने के लिए आये है।"

राजा गम्भीर हो गया। उसने कहा, 'मैं आपका तात्पर्य नही समझा।"

"महाराज ! हमारे साथ जो यह सन्नारी है, वह आपकी गान्धर्व विवाह की हुई पत्नी शकुन्तला है।"

जैसे राजा के हृदय पर आघात लगा हो। वह खडा होकर बोला, 'मेरी पत्नी, ये आप क्या कह रहे है ?"

"महाराजा ! याद कीजिए ।"

'हम खूब याद है। हमारी कोई पत्नी ऐसी नही है जो महल के बाहर हो ?"

"क्या हम तपस्वी झूठ बोल रहे ह ?' दूसरे तपस्वी ने नाराजगी मे कहा "जिनका जीवन सत्य, धम और न्याय के अनुसार चलना है व तपस्वी क्या झूठ बोलेंगे ? राजन ! यह आपकी धमपत्नी है, आप इसे सँभालिए। हमारा कत्तव्य इतना ही था कि हम इसे अपनी ससुराल पहुचा दें सो पहुँचा दिया। अब आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए।"

इतना कहकर वे दोनो तपस्वी चलते बने। शकुन्तला असहाय सी उस दरबार मे खडी रही। वह पीडा से तडप रही थी।

शकुन्तला ने अपना घूघट हटाकर कहा, "महाराज। अब पहचानिए अपनी पत्नी शकुन्तला को जिस पर मोहित होकर आपने कण्व मुनि के आश्रम मे गान्धर्व विवाह किया था। जिससे आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हे बाजे-गाजे के साथ ले जाऊगा। क्या महाराज आप भूल गए ?'

"मुझे कुछ भी स्मरण नही।"

'यह आप क्या कह रहे हैं महाराज उस पर्ण कुटिया म आपने ।"

राजा ने नाराजगी के भाव मे कहा, "लग रहा है कि तू मुझ पर झूठा आरोप लगा कर महलो की रानी बनना चाहती हो ? तू दुष्टा और दुश्चरित्र लग रही है।"

"महाराज। आप भूल रहे है। आपने मुझसे गान्धर्व विवाह किया था। मैं आपके बच्चे की मां बननेवाली हूँ।

इस बार राजा ठहाका लगाकर हंसा। बोला, 'लो, अभी तो तू विवाह की बात कर रही थी और अब मेरी सतान की माँ भी बनने की घोषणा कर दी। लग रहा है कि तू कुछ ही पलो मे यह भी कह देगी कि तू मेरे बच्चे की माँ भी बन गयी।"

सारा दरबार ठहाका मार कर हँस पडा।

शकुन्तला के काटो तो खून नही। वह अचेत सी हो गयी। यदि खम्बे का सहारा नही होता तो वह गिर जाती।

उसने सँभलकर कहा "महाराज। कोई नारी जो तपस्विनी है, वह अपनी इज्जत को भरे दरबार मे कलकित नही कर सकती। महाराज। यदि मैं झूठ हूँ तो धर्म मुझे जला डाले। यह पृथ्वी मुझे अपने मे समेट ले। आप झूठ कह रहे

हैं। ऐसा ढोंग तो कोई नीच प्राणी ही कर सकता है।"

"ऐ दुष्टा! मुझ हो मेरे दरबार में अपमानित कर रही है। यदि तूने अपनी यह झूठी कहानी समाप्त नहीं की तो मैं तुझे अपने दरबानों से धक्के देकर निकलवा दूँगा। जिस राजा के राज्य में धर्म का आचरण हर प्राणी करता है उस राजा पर तू आरोप लगाती है? जा, यहाँ से चली जा।'

'महाराज!" शकुन्तला रो पड़ी, "मेरा ऐसा अपमान और तिरस्कार मत कीजिए! मुझ पर दया कीजिए। अपनी पतिव्रता स्त्री को वन-वन भटकने के लिए मत छोड़िए।"

"कहा न, मैं तुम्हें नहीं जानता। तू मुझे एक चालाक कुलटा लगती है। और मेरी स्मरण-शक्ति भी इतनी कमजोर नहीं है कि मैं चंद माह की बातें भूल जाऊँ।"

"ओह! यह कैसा दुर्भाग्य है?" शकुन्तला ने विलाप कर कहा, "आज मैं अपने ही पति के द्वारा नहीं पहचानी जा रही हूँ। महाराज! मुझसे कपट मत करिए। सत्य हजारों अश्वमेध यज्ञ से भी श्रेष्ठ होता है।"

"शकुन्तले! मुझे ज्ञान की बात मत समझाओ। मैं शास्त्रों को जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि स्त्रियाँ प्राय झूठ बोलती हैं। यदि तेरे पास कोई प्रमाण हो तो दे।"

सहसा शकुन्तला को दुष्यन्त की दी हुई अँगूठी याद आयी। पर उस भाग्यहीना को क्या पता कि अँगूठी नदी पार करते हुए जल में गिर गयी थी।

उसने उत्साह से कहा, "मेरे पास आपकी दी हुई अँगूठी है।" उसने अपने बाएँ हाथ से दाएँ हाथ की अँगूठी निकालनी चाही पर अँगूठी थी कहाँ?

राजा ने व्यंग से मुसकराते हुए कहा, "बताओ, अँगूठी कहाँ है? चालक स्त्री! झूठ के पाँव कच्चे होते हैं। तू अब तो मान

जा रि तू मरी पत्नी नहीं है। अब अपना नाटक ब द करके चली जा वर्ना मुझ तुझे दड देना होगा।"

शकुन्तला भी हताश हो गयी। उसने कहा "महाराज, मैं जा ी हूँ पर इतना कहे देती हूँ कि आप एक दिन पछताएंगे। मैं आपकी सती पतिव्रता स्त्री हूँ। मेरी कोख म आपकी सतान है। पर दुर्भाग्य न मुझे अभी घेर रखा है। मैं जाती हूँ स्वामी पर एक दिन आप मरी तरह बिलखेंगे ?"

शकुन्तला द बार से बाहर निकल गयी। वह भाग्य के भरोसे चल पड़ी।

एक दिन राजा दुष्यन्त सध्या के समय बगीचे म टहल रहे थे। उनके साथ उनकी दो रानियाँ थी।

वे तरह-तरह के हास परिहास कर रहे थे कि दासी ने आकर सिर झुकाकर कहा, "महाराज! एक मछुआरा आपसे इसी समय मिलना चाहता है ?"

'मछुआरा ?' राजा चौंका।

"हा महाराज मैंने उसे बहुत समझाया पर वह मानता ही नही। बार-बार कह रहा है कि मुझे महाराज से अत्यन्त जरूरी काम है ?'

राजा दुष्यन्त ने अपनी रानियो की ओर देख कर कहा, 'सच्चा राजा वही होता है जो अपनी प्रजा के छोटे से छोटे निवेदन पर ध्यान देता है ?'

"हा महाराज।" रानियो ने उनकी बात का समर्थन किया।

राजा दुष्यन्त बगीचे से बाहर आये। दरबार मे आकर उन्होंने उस मछुआरे को बुलाया।

मछुआरे ने महाराज की जयकार की।

'क्या बात है भाई ?" राजा ने नम्रता से पूछा।

मछुआरे ने कहा, "महाराज! मैं मछुआरा हूँ। इधर-उधर मछलियाँ पकड़ कर अपने जीवन का निर्वाह करता हूँ। कल मैंने एक ऐसी मछली पकड़ी जिसको काटने पर उससे एक कीमती अंगूठी निकली।"

"अंगूठी ?"

"हाँ महाराज सबसे अचरज की बात यह है कि उस अँगूठी पर राज्यचिह्न भी अंकित है!"

"क्या कहते हो ?"

"उसने सिर नवाकर कहा, "महाराज! मैं सच कह रहा हूँ।" उसने वह अँगूठी निकाल कर महाराजा के सामने प्रस्तुत की, "यह देखिए वह अँगूठी!"

राजा ने जैसे ही वह अँगूठी देखी वैसे ही उसकी स्मृति लौट आयी। एक-एक चित्र उसकी आँखों के आगे घूम गया। राजा को लगा कि उसे चक्कर न आ जाए। उसने सिंहासन को मज़-बूती से पकड़ लिया।

"क्या बात है महाराज ?" मछुआरे ने काँपते हुए कहा, "मुझसे कोई अपराध हो गया ?"

"नहीं भाई, अपराध तो मुझसे हो गया। मैंने महापाप किया है। शकुन्तले शकुन्तले तुम कहाँ हो "

राजा दुष्यन्त तुरन्त महल में गया। वह चंद पलों में ऐसा लगने लगा जैसे वह कई दिनों से बीमार हो।

बड़ी रानी ने पूछा, "क्या बात है महाराज! आप एकाएक रुग्ण कैसे दिखने लगे।"

रानी! मुझसे घोर पाप हो गया जो स्त्री दरबार में आकर पुकार-गुहार कर गयी थी, वह स्त्री सचमुच मेरी पत्नी शकुन्तला है। मैंने उससे गान्धर्व-विवाह किया था। हे भगवान्! यह क्या

लीला है कि मैं उसे एकदम भूल गया। हाय ! मुझे क्या हो गया था ?

राजा पश्चाताप की आग मे जलने लगा।

बड़ी रानी ने राजा के कंधे पर हाथ रख कर कहा, "महाराज ! किसी पाप का निराकरण तभी हो सकता है जब उसका पश्चाताप किया जाय। महाराज ! यह सब कैसे हो गया ! जिस स्त्री के साथ आपने प्रणय-भरे क्षण गुजारे उसे एकदम कैसे भूल गए ?"

'पता नही, कौन-सा विधि-विधान था पर यह सत्य है कि उसके बार-बार विलाप करने के बाद भी मैंने उसे नहीं पहचाना। प्रिये ! मैंने उसे बहुत ही छोटे शब्द कहे जो उसको कुलटा प्रमाणित करते है। ओह ! उसने मुझ कहा था कि मैं आपकी पत्नी हूँ और मेरे भीतर आपके वंश का तेज है पर मैंने उसे दुत्कार दिया। मैंने उसे कहा कि कहा मेनका, कहाँ विश्वामित्र और कहाँ तुम एक साधारण नारी ! सच, मुझ जैसे पापी को नरक मे भी स्थान नही मिलेगा। अवश्य ही किसी अमोघ शक्ति का ही मुझ पर प्रभाव था। शकुन्तले ! अब मैं तुम्हे कहाँ ढूँढू ?"

राजा उसी तरह विलाप करने लगा जैसा शकुन्तला ने किया था।

अब राजा दुष्यन्त सदा रथ पर सवार होकर शकुन्तला को ढूँढने जाता था और निराश होकर लौट आता था।

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला का एक चित्र बनाया। वह उस चित्र के सामने खड़ा होकर कहता ... तुम्हे इतने नीच वचन कहे हैं जितना कोई ... भी नहीं कह सकता।

समय बीतता जा रहा था।

एक दिन राजा जगल म घूम रहा था। घूमते घूमते वह एक अत्यन्त ही पवत मालाओ से घिरे स्थल पर पहुचा। प्रकृति की अद्भुत छटा से लग रहा था कि यह भी कोई आश्रम है।

सहसा राजा दुष्यन्त को शकुन्तला की याद हो आयी।

ऐसे हो सुरम्य स्थल पर उसे शकुन्तला मिली थी। ओह! वह कितनी पवित्र स्त्री थी। उसके बडे-बडे नयनो मे प्रणय के झरने,फूट रहे थे। उसकी मधुर वाणी मे सरस्वती का वास था।

राजा इन्ही विचारो मे खोया हुआ था कि उसे सिंह-गर्जना सुनायी पडी।

राजा चौंका।

इधर-उधर देखा तो दग रह गया। एक आठ दस वर्ष का तेजस्वी सुन्दर बालक दो शेरो से खेल रहा था। इतना निर्भीक बालक देख कर राजा के मन मे उत्सुकता जागी कि पूछे—यह बालक कौन है?

राजा आहिस्ता-आहिस्ता उसके पास गया। शेर ने गुर्राकर उसे देखा तो राजा भी सावधान हो गया।

उस बालक ने कहा, "राजन्! हमारे आश्रम क आस-पास हिंसा करना मना है। ये जानवर मेरे सहचर है। मित्र हैं। यदि आपने इन पर घात किया तो मुझे भी अपना धनुष-बाण सँभालना होगा।"

राजा का उस बालक के प्रति अजीब-सा सम्मोह जाग गया उसे प्रतीत हुआ कि उसके अन्तस मे ममता के झरने फूटने लगे हैं। बालक के प्रति उसमे अजीब-सा मोह जाग गया। उसने आगे बढ कर कहा, "बालक! तुम कौन हो और किसके पुत्र हो?"

बालक ने शेरो को भगाते हुए कहा, "श्रीमन्! मैं बालक हूँ और अपनी माँ का बेटा हूँ।"

"और पिता ?"

"पिता को मैं नही जानता। श्रीमन् ! मेरी मा ही मरी जनक, रक्षक और पोषक है। वही मेरी पिता और गुरु भी है।"

"वहुत वुद्धिमान हो तुम।"

'यह भी मा की कृपा का फल है।"

राजा दुष्यन्त ने नजदीक आकर कहा, "यह अस्त्र शस्त्र की विद्या ।

"यह भी मेरी माँ ने ही दी है।"

'लगता है कि तुम अपनी माँ को वहुत प्यार करते हो?"

'प्यार के साथ साथ मैं अपनी माँ का वहुत आदर करता हूँ। उसकी आज्ञा पर मैं अपने प्राणो को न्यौछावर कर सकता हूँ।"

"क्या मैं तुम्हारी माँ के दर्शन कर सकता हूँ ?"

"कर सकते हैं, पर यदि मेरी मा आपको आज्ञा देगी तभी श्रीमन्।" वालक ने राजा को गहराई से देखते हुए कहा 'वसे आप रग ढग वेश-भूषा और शस्त्रो से किसी राजकुल के लगते हैं।"

"हाँ, मैं राजा हूँ।"

वालक ने उन्हे सिंहासननुमा चट्टान पर विठाते हुए कहा, 'मैं अपनी माँ को पूछ कर आता हूँ।"

वालक पर्णकुटिया की ओर चला गया जो थोडी दूर पर स्थित थी।

पर्ण कुटिया के चारो ओर ... हृदय
चारा ओर फूल खिले थे। लताओ ... थी
एक हिरन का वच्चा इधर-
माँ की ... राजा

राजा दुष्यन्त को सकेत करके कहा, "यह मेरी माँ की पर्ण-कुटिया है। लगता है मेरी पूजनीय माँ कुटिया के भीतर है।"

राजा ने चारो ओर दृष्टिपात करके कहा, 'ऐसा लगता है कि मैं किसी तपस्विनी के आश्रम मे आ गया हूँ। कितनी शान्ति बिखरी हुई है।"

वे दोनो कुटिया के समीप पहुँच गये थे। बालक ने पुकारा "माँ माँ! देख हमारे यहा कोई अतिथि आया है।"

"आती हूँ बेटा। तुम अतिथि को पर्ण-आसन पर बिठाओ।"

बालक ने पर्ण आसन बिछा दिया। राजा दुष्यन्त उस पर बैठ गया। आवाज कुछ जानी पहचानी लग रही थी। उसके भीतर हलचल मच गयी।

उसने सोचा कि यदि मेरा पुत्र होता तो भी इस बालक जितना होता।

उसी समय शकुन्तला बाहर आ गयी। उसने जैसे ही राजा दुष्यन्त को देखा, वैसे ही उन अपमानित क्षण याद हो आये। फिर भी अपने पर सयम करके कहा, "मैं अतिथि प्रभु का स्वागत करती हूँ।"

राजा का गला अवरुद्ध हो गया था। वह अपने को सयत करके बोला, 'शकुन्तले शकुन्तले मुझे पहचाना नही, मैं राजा दुष्यन्त हूँ तुम्हारा पति।"

शकुन्तला ने तीखी निगाह से देखकर कहा, 'कि आपको मैं नही जानती।"

'नही शकुन्तले ऐसा न कहो। विधि के विधान से त्रस्त मैं तब तुम्हें नही पहचान सका, तुम्हारा अपमान किया। मैंने तुम्हारे वचनो के मर्म को नही समझा। शकुन्तले! मुझे क्षमा कर दो।"

शकुन्तला ने उसी कठोरता से कहा, "जो पुरुष पति बनकर

स्त्री का सबसे बड़ा धन छीन लेता है, फिर उस स्त्री का अप मान करता है वह क्षमा के योग्य नहीं होता, दण्डनीय होता है।"

राजा दुष्यन्त ने पछतावे से कहा, "मैंने असह्य दंड पा लिया है शकुन्तले ! यह तो किसी का शाप था । मैं अपना भूल स्वीकार करता हूँ । मैंने ।"

"महाराज आप चले जाइए।" शकुन्तला ने उसे डाटते हुए कहा, 'आपने पति पत्नी के सम्बन्ध का सीधा हिस्सा भी शेष नहीं रखा। राजन ! यह बालक मेरा पुत्र है तुम्हारा नहीं । तुम चले जाओ वर्ना मैं तुम्हें कटु और अपमान के वाक्य बाणों से बींध डालूंगी।

राजा दुष्यन्त ने बालक की ओर देखा। बालक नासमय भाव से दोनों को देख रहा था। दो बड़ों के बीच में बोलना उसने अच्छा नहीं समझा।

राजा ने कहा, "शकुन्तले ! बात यह है कि मुझे जैसे ही तुम्हारी अँगूठी मिली वैसे ही मुझे सारी स्मृतियाँ स्मरण हो उठीं।

"वह अँगूठी कहाँ मिली ?"

"एक मछुआरे के पास से। उसने जैसे ही अपनी पकड़ी हुई मछली को काटा, उसमें से वह मिली। शकुन्तले ! यह भाग्य के खेल हैं ।

सहसा शकुन्तला को भी दुर्वासा का शाप याद हो आया। वास्तव में यह विधि का विधान ही था। फिर भी उसने राजा को सरलता से क्षमा नहीं किया।

जब राजा की आँखें भर आयीं और उसने यह धमकी दी कि यह अपने प्राण त्याग देगा तो शकुन्तला ने उसे क्षमा करते हुए अपने पुत्र से कहा, 'यह तुम्हारे पिताश्री है। तुम्हारा सर्वांग इन्हीं का है। अपने पिता को प्रणाम करो। ये महाप्रतापी राजा दुष्यन्त हैं।"

बालक ने राजा को प्रणाम किया। राजा ने उसे बाँहों में भर लिया।

राजा दुष्यन्त शकुन्तला को अपने देश ले आया। उस बालक का नाम भरत रखा गया। समय बीतने पर भरत राजा दुष्यन्त का उत्तराधिकारी बना। उसका शासन बडा ही विख्यात हुआ।

शकुन्तला के बेटे के नाम से ही इस भूमि का नाम भारतवर्ष पडा। मुनि कण्व ने भरत द्वारा कई यज्ञ कराए और भरत चक्रवर्ती सम्राट बना।

शकुन्तला और राजा दुष्यन्त वन में तपस्या करने चले गये।

शकुन्तला को नारी में सम्पूर्ण रूप में माना गया है।

दमयन्ती

भगवान सूर्य विदर्भ देश के गगनचुम्बी प्रासादो, हवेलियो तथा घरो पर अपनी पवित्र किरणें बिखेर चुके थे।

कई लोग अपने-अपने घरो की छतो पर खडे होकर सूर्य भगवान को अर्घ्य चढा रहे थे। मदिरो मे घट-ध्वनियाँ हो रही थी।

विदर्भ के राजा भीम के महल के चारो ओर वाटिकाएँ थी, उसमे शुक सारिकाएँ और मोर टुहुकने लगे थे।

नगर के बाहर एक सरोवर था।

आम्र, अगूर और अन्य फलो तथा बेला, चमेली, चम्पा एव सूर्यमुखी फूलो से सुगन्धित वाटिका के बीचो-बीच यह सरोवर था। सरोवर सुदर और बहुत बडा था। इसमे नगर के बाहर की नदी से एक जलधारा लाकर छोड दी गयी थी। इससे सरोवर मे सदा पानी भरा रहता था।

दमयन्ती अपनी सखियो के साथ जलक्रीडा करने के लिए आयी थी। जल मे इत्र डाल दिया गया था, जिससे वह महक उठा था। दमयन्ती जल मे स्नान करने लगी। केशिनी, सुहासिनी और वन्या नामक सहेलियाँ उससे उपहास कर रही थी।

केशिनी दमयन्ती के रूप-यौवन की प्रशसा कर रही थी। मीठी चुटकियो से चिढकर दमयन्ती ने कहा, 'क्यू री केशिनी, तेरी जबान तो आजकल बडी लम्बी हो गयी है ?"

"नही स्वामिनी ऐसी कोई बात नही है। सच, कल एक पडित अपने महाराज से कह रहा था, 'इतनी तेजस्वी, यशस्वी

और रूपवती कन्या इस पृथ्वी पर कोई नहीं है। आप इसके विवाह की जरा भी चिंता न करें। दूल्हा अपने आप मिल जायेगा।'

" 'यह कैसे हो सकता है पंडित जी, पुत्री राजा की हो या रंक की, युवा होने पर सबको एक ही चिंता हो जाती है। हर बाप सोचने लगता है कि कैसे मैं इसके लिए योग्य वर ढूंढूं। कैसे मेरे सिर से यह बोझा हल्का हो।

" 'आप ठीक फरमा रहे है महाराज।' पंडित ने गम्भीर स्वर में कहा, 'किन्तु जो कन्या देवताओ और यक्षो के बीच चर्चित हो उसे मनुष्यो में श्रेष्ठ वर क्यों नहीं मिलेगा ?'

" 'फिर भी आप कोई नाम तो बताइए। पंडित ने अनेक नरेशों के नाम गिना दिये। अंत में पंडित जी राजा नल का नाम लेते समय गर्व से तन गये। महाराज ! इस पृथ्वी पर नल से श्रेष्ठ कोई वर नहीं है। धीरवान, बलवान, रूपवान, गुणवान विद्वान, वेदो का ज्ञान, गौ-ब्राह्मणो का पालक, राजा नल से राजकुमारी दमयन्ती का विवाह हो जाए तो सोने में सुहागा हो जाए ।' सखि दमयन्ती, तुम्हारा क्या विचार है ? "

दमयन्ती का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह झट से डुबकी लगा बैठी।

सारी सखियां खिलखिला कर हंस पड़ी। फिर दमयन्ती तैर कर एक संगमरमर की चौकी पर बैठ गयी। विचारने लगी। सच, राजा नल महान योद्धा है। संसार में श्रेष्ठ और अनुपम हैं। एक बनजारा कह रहा था कि राजा नल जब रथ पर सवार होकर चलते हैं तब उनकी गरिमा देवताओं जैसी हो जाती है।

और दमयन्ती अपने हृदय में नल के प्रति प्रेम गहरा कर रही थी। वह उनकी स्मृति में खो गयी।

सुहासिनी ने हथेली मे पानी भर कर दमयन्ती पर फेंका, दमयन्ती चौंक पड़ी। उसने झट से पूछा, "क्या बात है कहाँ

खो गयी थी ?"

दमयन्ती ने झट से कहा, 'खोती कहाँ ? यहीं तो बैठी हंसो की क्रीडाएँ देख रही हूँ। देखो, हंस आज कैसे नयनाभिराम नृत्य कर रहे हैं ?"

"कौन से हंस ?" कन्या ने मुसकरा कर कहा, "मानसरोवर के हंस या बाहर के सरोवर के हंस ?"

तभी केशिनी ने पानी उछाल कर कहा, "मैं बताऊँ, नयन-सरोवर के हंस ! जैसे प्रसन्न होकर कह रहे हैं—हम स्वयं राजा के सपनो मे खोये हुए हैं, हम चाहते हैं कि वही तुम्हारे स्वामी बनें।"

दमयन्ती ने बनावटी गुस्से मे कहा, "तुम सबका मस्तिष्क फिर गया है। जिस व्यक्ति को मैंने देखा नही उसको वर कैसे मानूगी।"

"प्रत्यक्ष ही नही देखा है, सपने कई बार देख चुकी हैं आप।"

तभी कन्या आश्चर्य भरे स्वर मे बोली, "देखो देखो, उस हंस को देखो ! अपने सभी हंसो से अलग है, अनुपम है।"

सबकी दृष्टि उस ओर उठ गयी। देखा एक स्वर्णिम पखो का हंस कुल-कुल करता हुआ उस सरोवर मे तैर रहा है।

दमयन्ती के मुख से हठात् निकला—"अनुपम, ऐसा हंस मैंने कभी नही देखा।"

सुहासिनी ने झट से प्रस्ताव रखा, "इसे पकड लिया जाय तो आनन्द आ जाय।"

"पर पकडेगा कौन ?" केशिनी ने कहा। इस पर दमयन्ती ने कहा।

"जो पकडेगा, उसे मैं मोतियो का हार दूगी।"

फिर क्या था। सारी सखियाँ जल मे डुबकी लगा बैठी।

कन्या बहुत ही चचल थी। तैरना उसे सीमातीत आता था। उसने एक ऐसा लम्बा गोता लगाया कि हंस को पकड लिया।

दमयन्ती रूपवती होने के साथ साथ गुणवती भी थी। पक्षियो की भाषा समझती थी।

जब हस पकड कर दमयन्ती के पास लाया गया तब दमयन्ती ने पूछा, "अरे तुम कौन से हस हो, यहाँ कैसे आ गये ?"

हस ने अपने पख फैला दिये। उसने अपनी चोच को भिडा-भिडा कर बोलना शुरू किया।

दमयन्ती उसकी भाषा समझ गयी। वह प्रफुल्ल होकर बोली, "अरे यह तो राजहस है। बेचारा भटक कर यहाँ आ गया है ?"

राजहस ने एक पल नृत्य सा किया। फिर बोला, "मैं नाटक करने नही आया हूँ। मैं तो सदेशवाहक हूँ।"

अब सब सखिया सचेत हो गयी। उनके कान खडे हो गये। दमयन्ती भी गम्भीर हो गयी। पूछ बैठी, "किसके सदेशवाहक हो ?"

"राजा नल के !"

दमयन्ती के मुँह से हठात् निकल पडा, "राजा नल के ?" निषध-पति राजा नल के ?"

हस ने अपना सिर हिलाया।

दमयन्ती का मुख लाल हो गया। हस ने मुग्ध स्वर मे कहा, "राजकुमारी दमयन्ती, राजा नल का रूप अश्विनी कुमार के अनुरूप है। मनुष्यो मे उसके जोड का दूसरा नही है। वह तुम्हारे प्रणय मे आकुल है और तुम्हे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। तुम दोनो इस पृथ्वी पर उत्तम हो इसलिए तुम दोनो का विवाह सर्वश्रेष्ठ होगा।"

दमयन्ती सब कुछ भूल गयी। उनके मन मे भी नल की स्मृतिया नाचने लगी। वह खो गयी अपने आप मे। बोली, "मैं भी यही चाहती हूँ। आप निषधपति को कहिएगा कि दमयन्ती भी आपके चरणो की दासी बनकर अपने को धन्य समझेगी।"

राजहंस ने पंख फड़फड़ाये। फिर वह उड़ चला।

सखियाँ चौंक कर बोली, "अरे, केशिनी! राजहंस कहाँ गया ?"

सुहासिनी हँस कर बोली, "सखि, वह उड़ गया। राजा नल को आपका संदेश देने चला गया। कोई बात नहीं, दोनों ओर एक-सी लगन है।"

सचमुच दमयन्ती कहीं खो गयी थी। उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहा कि उसने राजहंस को क्या कहा। पर लज्जा से उसका मुख गुलाब-सा हो गया और नयन झुक गये।

इसके बाद वे सब हँसी ठिठोली करती हुई प्रासाद की ओर चल पड़ीं।

आधी रात हो गयी थी। चन्द्रमा नभमंडल के बीचोबीच चमक रहा था। शीतल मनमोहक हवा चल रही थी।

दमयन्ती अपने महल के बरामदे में बैठी। उदास और खोयी खोयी। उसे लगने लगा था कि एकान्त उसके लिए दुखदायी है। लम्बी रात नागिन-सी काटने को दौड़ती है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

इस तरह उसका मन न किसी मनोरंजन में लगता था और न किसी हँसी-खेल में। उसे अपनी सखियों की हँसी-ठिठोली नहीं सुहाती थी। वह चाहती थी वही दुखदायी एकान्त, जहाँ वह राजा नल के बारे में सोचती रहे। वह रात-रात भर नहीं सोती थी। मनोरंजन उसे अरुचिकर लगने लगा था।

एक दिन विदर्भ नरेश भीम अचानक दमयन्ती के कक्ष में आ गये।

दमयन्ती ने झुक कर प्रणाम किया।

राजा भीम का आशीर्वाद के लिए उठा हुआ हाथ उठा ही रह गया।

"क्या बात है बेटी ? तुम्हारा चेहरा पीला क्यों है ?" तुम

इतनी दुबल क्यो हो गयी हो ? तुम्हारे नयनो मे पीडा क्यो झलक रही है ?"

दमयन्ती पिता द्वारा एक साथ पूछे गये इतने प्रश्नो को सुन कर लज्जित हो गयी। उसके मुँह से एक ठडी उच्छवास निकली।

राजा भीम ने तुरन्त अपनी रानी को बुलाया। रानी व्यग्र हो उठी, क्या बात है ? वह भाग कर आयी।

"क्या बात है महाराज ?"

महाराज ने कहा, "अपनी बेटी को देखो। कितनी दुबल हो गयी है।"

रानी ने दमयन्ती को देखा तो सन्न रह गयी। उसकी बेटी बहुत ही थक गयी है। इसे क्या हो गया है अचानक ?

उसने राजा से कहा, "महाराज, यह अचानक इतनी दुबली कैसे हो गयी ?"

राजा कुछ देर तक विचारता रहा। फिर बोला, "आज मैंने जाना कि राजा और रानी माँ-बाप नही बन सकते।"

रानी के नयन तरल हो गये। वह भी व्यथित स्वर मे बोली, "हाँ महाराज, मैं तो कई दिनो से इधर आयी ही नही। फिर वह दमयन्ती के सन्निकट आकर बोली, "बेटी, क्या बात है ? तुम्हे कौन सा रोग हो गया है ?"

दमयन्ती ने कहा, "मैं बिलकुल ठीक हूँ माँ, मुझे कोई रोग नही है।"

तभी केशिनी ने कुछ कहना चाहा तो दमयन्ती ने आँखें तरेर कर उसे शान्त कर दिया। रानी उस सकेत का अर्थ समझ गयी। उसने महाराज से जाने के लिए प्रार्थना की।

राजा चला गया।

रानी ने दमयन्ती के सिर पर दुलार का हाथ फेरकर कहा, 'बेटी ! माँ से आज तक किसी ने कुछ नही छुपाया ? सच-सच बता क्या बात है ?"

दमयन्ती की आँखो से झर झर आँसू बहने लगे। उससे

कुछ भी नहीं कहा गया। केवल सुक्तियाँ-ही सुक्तियाँ।

तब केशिनी ने सिर झुकाकर कहा, "रानी जी आप आज्ञा दें तो मैं कुछ निवेदन करूँ।"

दमयन्ती नही चाहती थी कि केशिनी कुछ कहे पर रानी की आज्ञा का पालन करना केशिनी का पहला कर्त्तव्य था।

केशिनी ने कहा, "रानी जी, राजकुमारी दमयन्ती को सबसे बडा रोग यह लगा है कि वह युवा हो गयी है।"

रानी को सारी बात एक पल मे समझ मे आ गयी।

उसने पश्चाताप प्रकट करके कहा, 'आह! मैं कितनी नादान माँ हूँ। अपनी बेटी को अब भी बच्ची समझ रही हूँ। तुरन्त ही स्वयवर का आयोजन कराऊँगी ताकि मेरी बेटी अपना मन-पसन्द वर चुन सके।"

रानी चलने लगी तब केशिनी बोली, "महारानी जी, राजा नल को अवश्य बुलाइयेगा।"

रानी अब मुस्करा पडी।

स्वयवर की घोषणा कर दी गयी। विदर्भ देश को खूब अच्छे ढग से सजाया गया। हर गली, मोहल्ला उत्साह और उमग से भरा था।

प्रासाद मे आगन्तुक राजा और देवताओ को ठहराने की व्यवस्था थी।

राजा नल को भी स्वयवर का आमन्त्रण मिला। वह प्रसन्नता मे डूब गया। दमयन्ती के प्रति उसमे अपार अनुराग जाग गया था। वह वहा जाने के लिए तयार हो गया।

राजा नल अपने युग का श्रेष्ठतम सारथी था। उसके पास पवन गति मे भागने वाले घोडे थे, जो देवताओ के घोडो को भी पराजित कर देते थे।

उसने अपने भाई पुष्कर को बुलाया। दास ने जाकर कहा, "राजकुमार पुष्कर एक बाजी खेल रहे हैं। बाजी होने पर

तुरन्त आ जायेंगे। प्रतीक्षा करने को कहा है।"

नल को एक आघात-सा लगा कि इधर पुष्कर की रुचि जुए के प्रति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है उसे रोकना चाहिए।

थोडी देर मे पुष्कर आ गया। उसने नल को प्रणाम किया। पूछा, 'क्या आज्ञा है महाराज? देर के लिए क्षमा चाहता हूँ।"

नल ने उसे बैठने के लिए कहा। जब वह बैठ गया तो राजा-नल ने कहा, 'पुष्कर! और किसी भी वस्तु का बुरा नही होता पर अति हर बात की बुरी होती है। जुए के लिए राजा, महाराजाओं को एक निश्चित समय रखना चाहिए। इस दोपहर में जुए।"

पुष्कर ने बीच मे कहा, "महाराज! सबको अपने-अपने अलग-अलग शौक होते हैं, मुझे भी जुए मे सवश्रेष्ठ बनना है आप स्वय देखेंगे कि एक दिन इस पृथ्वी पर मुझसे अच्छा कोई खिलाडी नही होगा।"

'ठीक है, पर राजकाज मे यह अधिक नही होना चाहिए। राज्य के प्रबन्ध की अपनी अलग जिम्मेदारियाँ होती है।"

"राज आपका है। मैं तो केवल आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ। हुक्म कीजिए। मुझे अब क्या करना है?"

नल उसके व्यग्य को समझ गया। फिर भी उसने अपने धैय को नही त्यागा। बोला, 'मैं विदभ देश जा रहा हूँ। वहाँ की राजकुमारी दमयन्ती का स्वयवर है। मुझे भी आमन्त्रित किया गया है।" एक पल रुककर वह पुन बोला, "और तुम तो जानते ही हो कि मैं दमयन्ती से हार्दिक अनुराग करता हूँ।"

"जानता हूँ महाराज।" पुष्कर ने उत्तर दिया, 'आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं निपध मे न्याय व्यवस्था बनाये रखूगा। मैं सदा सुख शान्ति के लिए प्रयत्नशील रहूँगा।"

"मुझे तुमसे यही आशा है।"

राजा नल अपने द्रुतगामी घोडा के रथ पर आरूढ होकर चल पडे।

घोडे हवा से वातें कर रहे थे।

स्वर्गपुरी।

इन्द्र का प्रासाद। इन्द्र स्वर्ण-रत्न जडित शय्या पर बैठे थे। उनके दोनो ओर दो अप्सराएँ खडी थी। शची उन्हे सोमरस पिला रही थी।

विश्व के सुख-दुःख की चर्चा हो रही थी। तभी विश्वयात्री मुनि नारद ने प्रवेश किया। वीणा के तार को झकृत करके नारद ने कहा, "नारायण-नारायण!"

महामुनि का सभी प्राणियो और देवताओ मे समान आदर था। इन्द्र और शची ने प्रणाम किया।

इन्द्र उनके सम्मान मे खडे हो गये। शची ने अपने पति का अनुसरण किया।

"आज मुनिवर ने आने का कष्ट कैसे किया? कोई आज्ञा?"

नारद जी ने मुस्कराकर कहा, "नारायण नारायण, मैं कोई आज्ञा दू! देवेश! मैं तो सदा देवताओ की प्रतिष्ठा वचाने आता हूँ।"

इन्द्र गम्भीर हो गये। पूछ बैठे, "हमारी प्रतिष्ठा को क्या खतरा है।"

नारद ने कहा, "प्रतिष्ठा फूल के समान होती है। फूल को जरा भी प्रतिकूलता मिली कि वह कुम्हलाया। पृथ्वी पर एक महान स्वयवर हो रहा है। विदर्भ देश के राजा भीम की पुत्री दमयन्ती का स्वयवर। देवाधिदेव! दमयन्ती देवता और मनुष्य योनी की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है।"

शची तपाक से बोली, "क्या वह मुझसे भी सुन्दर है?"

'सौ गुना।" नारद जी बोले।

शची जल-भुन गयी।

नारद जी को इसकी कोई चिंता नही। इन्द्र चौक पडा।

उसके हृदय मे उथल-पुथल हो गयी। उसे नारद जी की बात का विश्वास नही हुआ। नारद जी ठहरे अन्तर्यामी। सब मनो-भाव समझने वाले। झट से बोले, "इन्द्रदेव को आशका करना उचित है क्योकि जिस देवता के चरणो मे त्रिलोक का वैभव हो उसे दमयन्ती का परिचय क्यो नही है ? इसे ही प्रकृति कहते हैं। इन्द्रदेव ! सब मनुष्यो और देवताओ से बडी प्रकृति है। वह हम सबको अपनी उगलियो पर नचाती है।"

एक पल सन्नाटा छाया रहा।

नारद जी ने वीणा पर झकार करके कहा, "अब मैं सत्य बोल रहा हूँ। दमयन्ती इतनी रूपवती, गुणवती और शीलवती है कि ऐसी नारी त्रिलोक मे एक ही है।"

"फिर हम भी स्वयवर मे जायेंगे ?" इन्द्र ने झट से अपना निर्णय सुना दिया।

"नारायण-नारायण, आपका वहा जाना ठीक नही है।"

नारद जी ने परामर्श देते हुए कहा, "वहाँ आपका अपमान हो जायेगा।"

"मेरा अपमान ?" इन्द्र गरज पडा। वह तन कर खडा हो गया, "इस चराचर मे ऐसा कौन है जो इन्द्र का अपमान कर दे ?"

नारद जी झट से बोले, 'दमयन्ती। वह आपका अपमान निश्चय रूप से करेगी।"

"क्यो ?"

'क्योकि वह निषध के राजा नल से प्रेम करती है।"

"मैं प्रेम का भूत एक पल म उतार दूगा। समझे आप ?"

प्रेम का भूत देवता-दैत्य और मनुष्यो से नही उतरता है देवेश ! वह भूत प्रबल होता है। वह अपना नाश करा लेता है पर ।"

"पर क्या ? जब दमयन्ती सात भुवनों के स्वामी इन्द्र को देखेगी तब वह प्रेम-वेम सब भूल कर वरमाला मुझे पहना

देगी।"

"यह भी करके देख लीजिए।" नारद जी ने कहा, "दमयन्ती ने मन-ही-मन नल को वरने की दृढ प्रतिज्ञा कर ली है।"

"देख लूगा।"

नारद जी ने इन्द्र को चलते-चलते फिर समझाया, "आप स्वयवर मे मत जाइये। यदि जायेंगे तो आप अपना गौरव ही खोयेंगे।"

इन्द्र ने नारद जी की चुनौती को स्वीकार कर लिया। जब इन्द्र स्वयवर मे चलने लगा तब उसे यम, वायु, वरुण और अग्नि भी मिल गये।

इन्द्र ने नारद जी का कथन सुनाया। इस पर चारो देवता भी आवेश मे भर उठे।

यम ने सिर ऊंचा करके कहा, "मैं मृत्यु का दूत हूँ। सारी पृथ्वी पर हाहाकार मचा सकता हूँ। भला दमयन्ती मुझे छोड कर किसी तुच्छ मनुष्य को वर सकती है।"

अग्नि ने कहा, "मै सबको अग्नि देता हूँ जिससे मनुष्य पोषण पाता है। क्या मुझे छोडकर दमयन्ती किसी पृथ्वी के राजा को वरेगी ?"

इसी तरह सबने अपनी अपनी प्रशसा की और बताया कि दमयन्ती देवताओ को छोड कर मनुष्य को नही वरेगी।

इन्द्र ने नारद जी की बात याद दिलायी। इस पर देवता खिलखिलाकर हँस पडे। वरुण ने कहा, "हम मनुष्यो के लिए सभी क्षेत्रो मे महान हैं। रूप, गुण, विद्या और वीरता मे श्रेष्ठ हैं। फिर भला दमयन्ती नल को कैसे अपना पति बना सकती है ?"

इस प्रकार पांचो लोकपाल स्वयवर मे भाग लेने के लिए चल पडे।

वे चारो एक सुन्दर विमान पर थे जो आकाश मे उड रहा था।

एक वन मे उन चारो ने नल को रथ पर जाते हुए देखा। हालाकि वे देवता थे लेकिन नारद जी की बात से वे मन-ही-मन भयभीत हो गये थे। उनके मन मे शका जम गयी थी कि कही दमयन्ती उनका अपमान न कर दे। यदि देवताओ का अपमान हो गया तो मनुष्य की शक्ति बढ जायेगी।

इन्द्र ने शका प्रकट की, "देवगण! नारद जी भूत, भविष्यत और वर्तमान के ज्ञाता हैं।" उनकी बात सर्वथा निराधार नही होती।

"फिर हमारा अपमान होना क्या सम्भव है?"

'हो सकता।"

"तो फिर हमे कोई उपाय करना चाहिए जिससे दमयन्ती राजा नल को अपना पति न बना सके।"

इन्द्र ने समझाया, "मनुष्य जाति बडी सरल और भोली होती है। वह छोटी छोटी बात पर प्रतिज्ञा करती है और वचन देती है। हमे राजा नल से वचन ले लेना चाहिए।"

पाचो लोकपालो ने सोच-समझ कर वन म विमान को उतारा।

नल को देखते ही पाचो चौंक पडे। इतना तेजस्वी मानव? यह तो देवताओ से भी महान बन रहा है।

"इसे देखकर दमयन्ती मोहित हो जायेगी।" यम ने कहा।

इन्द्र ने बताया, "नारद जी कह रहे थे कि दमयन्ती ने नल को पति बनाने का निश्चय कर लिया है। ऐसी स्थिति मे हमे सचेत रहना चाहिए और नल को अपने फदे मे फास लेना चाहिए।'

देवताओ ने ऐसा ही किया। उन्होने नल का रास्ता रोक लिया। पाचो ने अपना अलग-अलग परिचय दिया।

नल पाचो देवताओ को अपने समक्ष पाकर गद्‌गद हो गया। बोला, "आज मैं कितना भाग्यशाली हो गया हूँ कि मुझे आप जैसे देवताओ के दर्शन हो गये।"

इन्द्र ने कहा, 'नल, तुम्हें हमारा काम करना है। क्या तुम करोगे ?"

'अवश्य ही देवेन्द्र।"

"पहले वचन दो।"

नल ने तुरत ही देवताओ को वचन दे दिया। यम ने कहा, "जैसा हम कहेंगे, वैसा ही तुम करोगे ?"

'अच्छा।"

इन्द्र जानता था कि मनुष्य अपने वचन का अधिक पक्का होता है। इसलिए उसने राजा नल को वचनो मे बाँध लिया।

राजा नल ने विनीत स्वर में पूछा 'अब बताइये पचदेव कि मुझे क्या आज्ञा है ?"

'राजन !" इन्द्र ने कहा, "तुम कहाँ जा रहे हो नल, हमें इसका पता नही है। पर सबसे पहले तुम हमारा काम करो। हम देवता है। तुम दमयन्ती को जाकर कहो कि वह हममे से किसी एक को अपना पति बनाये।"

नल के हृदय पर वज्रपात सा हो गया। वह पाँचो देवताओ को आँखें फाड कर देखने लगा। बडी कठिनता से वह बोला, "देवगण, मैं भी दमयन्ती के स्वयवर म जा रहा हूँ। मुझे यह कहने के लिए भेजना कहा तक उचित है।"

"उचित अनुचित प्रतिज्ञा करने से पहले सोचना चाहिए था।" यम ने क्रोधित स्वर मे कहा, 'अपने वचनो की रक्षा करो राजा नल।'

'आप जानते हैं कि ।"

"हम इतना ही जानते हैं कि तुम हमसे वचनबद्ध हो।" अग्नि ने कहा।

राजा नल ने सिर झुका लिया। कहा, "मैं अपने वचनो का पालन करूँगा।"

देवता प्रसन्न हो गये।

राजा नल से विदा होकर इन्द्र ने अपने साथी देवताओ से

कहा, "क्यो देवगण, कैसा चक्कर चलाया ? अब दमयन्ती इसे कभी भी अपना वर नही बनाएगी।"

देवता खिलखिलाकर हँस पडे, "मूर्ख प्राणी !"

राजा नल उदास उदास सा विदर्भ पहुँचा। विदर्भ की गली-गली, चौक-चौक एव सारे राजपथ सजे हुए थे।

राजा नल के आने का समाचार सुनकर विदर्भ मे हलचल मच गयी। तुरन्त एक दास ने जाकर केशिनी को समाचार दिया कि राजा नल पधार गये हैं।

केशिनी की बाछें खिल गयी। वह हवा की गति से तेज भागकर दमयन्ती के पास पहुँची। दमयन्ती को बाँहो मे भर कर उसने कहा, 'मुझे हीरो का हार पहनाइए, मैं शुभ सम्वाद लायी हूँ।"

दमयन्ती के नयन चमक उठे। अधरो पर हास तैर आया।

"हार देने की कहिए न।' केशिनी ने आग्रह भरे स्वर मे कहा, "वर्ना मैं नही बताऊँगी।'

दमयन्ती ने उसको बताया, 'मैं जानती हूँ कि तुम क्या कहना चाहती हो। यही कि राजा नल आ गये हैं। उनके रथ मे जुते हुए घोडा की टापो से सारा नगर गूज जाता है।"

केशिनी उदास हो गयी।

दमयन्ती ने उसे गले का हार देकर कहा, "केशिनी, पुरस्कार तो तुम्ह मिलेगा ही बस अब कृपा करके मुझे "

"समझी, पर जरा कठिन काम है।"

"करो।"

केशिनी राजा नल के पास गुप्त रूप से गयी। राजा नल पहले से ही तैयार बैठे थे। उसने व्यग्रता से कहा, 'मैं स्वय दमयन्ती से मिलने को इच्छुक हूँ। मुझे मेरा कर्त्तव्य पूरा करना है।"

केशिनी उसे गुप्त मार्ग से दमयन्ती के महल मे ले गयी।

दमयन्ती उसे देखकर रुआँसी हो गयी। उससे कुछ पल बोला नहीं गया। अन्त में राजा ने ही मौन भग किया, "देवी! मैं आपके सामने राजा नल बन कर नहीं आया हूँ बल्कि एक सदेश-वाहक बन कर आया हूँ। आज्ञा हो तो कहूं।"

दमयन्ती की आकृति मलीन हो गयी। वह धीरे से बोली, "कहिए।"

"आपके स्वयवर में इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम और वायु आ रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि आप उनमें से एक को अपना पति बनाइये।"

दमयन्ती यह सुन कर चौंक पडी। राजा नल ने आदि से अन्त तक सारी बात बता कर कहा, 'देवी! मैं वचनों से विवश हू।"

'आपने अपना वचन पूरा किया और अब मैं अपने मन की प्रतिज्ञा को पूरी करूंगी। राजन्! मैं मन से आपको पहले ही अपना पति मान चुकी हूँ और अब मैं स्वयवर में उसे पक्का कर लूंगी। मुझे देवताओं का वैभव नहीं चाहिए। मुझे चाहिए राजा नल का प्रेम।"

वहाँ से आकर राजा नल ने देवगणों को बताया मैंने अपने वचन का पालन कर लिया है।

"दमयन्ती ने क्या कहा?"

राजा नल को झूठ बोलना जरा भी पसन्द नहीं था। उसने देवगणों से कहा, "देवी दमयन्ती ने कहा है कि मैं अपने मन की प्रतिज्ञा को पूरी करूंगी। मुझे लगता है कि वह मुझे ही वर-माला पहनायेगी।"

देवतागण अपमान की आग में जल उठे। उन्होंने निश्चय किया कि वे दमयन्ती को अपनी पत्नी बनाकर ही रहेंगे।

तुरन्त इन्द्र ने अपने साथियों को भेष बदलने के लिए कहा। विज्ञान, शक्ति और कौशल में मनुष्य से महान देवताओं ने राजा नल का भेष बना लिया। सबने एक-दूसरे को देखा।

इन्द्र ने कहा, "अब देखना है कि दमयन्ती किसे अपना पति बनाएगी। किसे वरमाला पहनाएगी।"

स्वयंवर का मण्डप सुन्दर ढंग से सुसज्जित किया गया था। द्वार पर दो हाथी आने वाले मेहमानों को मालाएँ पहना-पहना कर स्वागत कर रहे थे।

वन्दनवार और सुगंधित फूल चारों ओर बिखरे पड़े थे।

दूर-दूर के राजा और देवता आए हुए थे। राजा नल ने मंडप में प्रवेश किया। वह एक सिंहासन पर बैठा था। उसी पल पाँचों देवता नल का भेष धारण किये हुए राजा नल के पास आकर बैठ गये।

नगाड़ा बजा।

दमयन्ती ने स्वयंवर मण्डप में प्रवेश किया। सारी सभा की आँखें दमयन्ती के अनुपम सौन्दर्य पर जम गयीं।

दमयन्ती ने एक पल चारों ओर देखा, फिर वह राजा नल के लिए आगे बढ़ने लगी। उसके हाथ में वरमाला थी।

वह जैसे ही राजा नल के पास पहुँची वैसे ही वह विस्मय में डूब कर पत्थर की-सी हो गयी। उसने मन ही-मन सोचा, 'यह क्या? एक की जगह छः नल बिलकुल एक जैसे!'

वह समझ गयी कि इसमें कौन सा रहस्य है। उसने एक पल छहों नलों को देखा फिर कहा, "भेष बदल कर किसी कुँवारी कन्या को वरना महाकपट होता है। मैं देवताओं से प्रार्थना करूँगी कि वे अपने असली रूप में आ जायें।"

देवताओं पर उसकी बात की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई।

उसने विनम्र स्वर में कहा, 'मैं इस शुभ अवसर पर किसी का अहित करना नहीं चाहती हूँ पर मैं देवता और सारी उपस्थिति के सामने घोषणा करती हूँ कि मैंने राजा नल को हंस के संदेश के बाद पति मान लिया था। मेरे मन और वचन में राजा नल के अलावा किसी का भी ध्यान आया हो तो प्रकृति मुझे असीम दण्ड दे। उसने बार-बार करुण विलाप किया पर

देवताओ के हृदय नही बदले।

तब दमयन्ती अपने प्रेम की सम्पूर्ण शक्ति को लेकर बोली, "हे मानवो से श्रेष्ठ और शक्तिवान देवता, आप यह न समझें कि आप सदा मानवो को छलते रहेगे। मैं आप लोगो को सत्य की तरह विवस्त्र कर दूगी। हे प्रकृति! तू सबसे शक्तिवान और दयालु है। तू एक ऐसी शक्ति है जो देवताओ का गर्व चूर्ण करती है।" फिर वह सारे मण्डप को सम्बोधित करके बोली, "ये देवता जो अपने को सभ्य, सुसस्कृत और महान कहते हैं, कितने ओछे और पशुवत हैं कि वे एक अबला को उसकी इच्छा के बिना अपनी बनाना चाहते है। मैं कहती हूँ कि इनका आचरण दैत्यो के समान है। मैं इनके वैभव पर लात मारती हूँ तथा अपनी आत्मा के सत्य के बल पर इन्हे असली रूप मे लाती हूँ।"

दमयन्ती के तेज से देवता कॉप गये। कुछ ही पलो मे वे अपने असली रूप मे आ गये। दमयन्ती से क्षमा मागने लगे। इन्द्र ने कहा, "हम पराजित हो गये हैं।" सती दमयन्ती ने शात होकर राजा नल को अपना पति बना लिया। वह लज्जा से लाल हो उठी। नल ने भी अत्यन्त ही प्रेम से दमयन्ती को देखा। देवता प्रसन्न हो गए। राजा भीम ने आशीर्वाद दिया।

इसके बाद इन्द्र ने वरदान दिया, "मैं तुम्हे यज्ञ मे प्रत्यक्ष दर्शन दूँगा।"

अग्नि ने कहा, "जहाँ तुम चाहोगे, मैं वहाँ उपस्थित हो जाऊँगा।"

यम ने कहा, "तुम पृथ्वी पर सबसे स्वादिष्ट खाना पका सकोगे।"

वरुण ने आशीष दिया, "तुम जहाँ चाहोगे जल आ जायेगा।"

सूर्य ने कहा, "मैं तुम्हारी सदा विपत्ति मे रक्षा करूँगा।"

सारे देवता अपने-अपने विमानो मे बैठकर चले गए।

राजा भीम बहुत ही प्रसन्न था। उसने राजा नल और

दमयन्ती को आशीर्वाद दिया और महल में ले जाकर विधिवत् विवाह सम्पन्न कर दिया। अपनी पुत्री को राजा भीम ने हजारों गायें, सोना चाँदी और हीरे मोती दिये।

राजा नल अपने देश निषध को लौट आया। दमयन्ती अपने साथ अपनी तीनों प्रिय सखियाँ लाना नहीं भूली।

देवताओं के विमान आकाश-मार्ग में जा रहे थे। जिधर से वे विमान जाते थे उधर एक अद्भुत छटा बिखर जाती थी। लगता था मनुष्यों से अलग कोई जा रहा है।

रास्ते में कलि और द्वापर मिले। वे भी देवता थे। उन्होंने पाँचों महान देवताओं को देखा तो उत्कंठित हो गये।

प्रार्थना करने पर इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण और सूर्य अपने-अपने विमानों से उतरे।

कलि ने नतमस्तक होकर पूछा, "बात क्या है देवाधिदेव? किधर से आना हो रहा है?"

इन्द्र ने कहा, "कलि! हम दमयन्ती के स्वयंवर से आ रहे हैं?"

द्वापर ने झट कहा, 'आप बड़े उदास लग रहे हैं? क्या कोई विशेष बात हुई है?"

यम ने दुःखी मन से कहा, 'हाँ द्वापर, हम पाँचों लोकपालों का ऐसा अपमान पहले कभी नहीं हुआ था।"

कलि ने पूछा, 'लेकिन हुआ क्या? आप मौन क्यों हैं?'

इसी पल अपने विमान पर बैठे महामुनि नारदजी आ गये। वीणा को झंकृत करके वे बोले, "नारायण नारायण-नारायण"

"नमस्कार देवर्षि।" कलि ने प्रणाम किया।

आयुष्मान भव।" नारद जी ने कहा, 'आप देवताओं के घावों को क्यों हरा कर रहे हैं। आगे ही ये बड़े दुःखी हैं।"

देवताओं को दुःखी करने वाला इस पृथ्वी पर उत्पन्न नहीं

हुआ।"

'घमण्ड किसी का भी नहीं रहता है कलि, घमंडी का सिर सदा नीचा होता है। जो जीव नम्र होते है, वे अपना नाश कभी नहीं कराते। मैंने तो इन्हें पहले ही कह दिया था कि आप स्वयंवर में न जायें। राजकुमारी दमयन्ती सिवाय राजा नल के किसी को अपना पति नहीं बनाएगी। पर ये नहीं माने।"

"तो दमयन्ती ।'

नारद जी मुस्कराये। बोले, 'दमयन्ती ने जो सोचा वह किया, पर आपके इन महान और सभ्य देवताओं ने अत्यन्त ही भ्रष्ट तरीके अपनाए। इन्होंने तो दमयन्ती को पाने के लिए राजा नल का रूप भी धारण कर लिया। दमयन्ती इससे भी नहीं घबरायी। उसने इनके मुखौटे उतार दिए। ऐसा अपमान? सारे मनुष्यों के बीच देवताओं की वह कितनी दयनीय स्थिति थी। ये सब अपराधियों की भांति खड़े थे और सारे मनुष्य मन-ही-मन मुस्करा रहे थे।"

कलि ने गुस्से में कहा, "एक राजा इतना ढीठ? देवताओं से टक्कर! मैं उसे देख लूंगा। देवताओं के अपमान का बदला लूंगा।"

नारद जी उसे रोकते हुए बोले, "शांत शांत, कलि श्रीमान शांत! इतना आवेश में मत आइए, जिस जीव की रक्षा कोई नहीं करता है उसकी रक्षा एक सबसे बड़ी शक्ति करती है। आप व्यर्थ ही क्यों कष्ट कर रहे है। जिस तरह ये अपमानित हुए हैं उसी तरह आपको भी अपना-सा मुंह लेकर आना पड़ेगा, समझे।"

"मैं आपको बता दूंगा। राजा नल को रास्ते का भिखारी नहीं बनाया तो मेरा नाम कलि नहीं।" उसने द्वापर से पूछा, "क्यों द्वापर, तुम मेरा सहयोग करोगे?"

"अवश्य मित्र! मैं आपको सहयोग अवश्य दूंगा। हमें देवताओं के अपमान का बदला लेना चाहिए।"

नारद जी ने उन्हे फिर समझाया पर कलि और द्वापर नही माने।

वे दोनो राजा नल से बदला लेने के लिए तैयार हो गये। तब इन्द्र ने कहा, "भाई कलि, गलती हमारी थी, इसका हमे दड मिल गया, पर तुम व्यर्थ मे क्यो उलझ रहे हो। भूल जाओ सब बातो को।"

"नही, हम बदला लेगे।"

नारद जी मुस्कराये। कलि और द्वापर निपध की ओर चल पडे।

नारद ने इन्द्र की ओर देखा।

इन्द्र ने कहा, "उस धर्मपरायणा स्त्री के सम्मुख इन्हे पराजित होना पडेगा। उसकी आत्मा मे सत्य और विश्वास की महान शक्ति है। वह अपने आचरण से देवी हो गयी है। अपराजित बन गयी है।"

कलि और द्वापर दोनो ने निपध मे प्रवेश किया। कलि को लगा कि वे किसी देवताओ की नगरी मे आ गये हैं। इतना सुख, सतोप और समृद्धि यहाँ देखने को मिलती है? सब वर्णों के लोग, अपने-अपने कर्त्तव्यो का पालन करते है। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते है। न्याय इतना सस्ता है कि किसी को दुखी नही होना पडता। प्रभात शखो की पवित्र ध्वनियो से आरम्भ होता है और साँझ मन्दिर की आरतियो से।

राजा नल और दमयन्ती का घरेलू जीवन अत्यन्त आनन्दमय था। राजा नल तो क्या, स्वय दमयन्ती राज काज की बातो मे हिस्सा लेती थी। दोनो जीवन का सुख ले रहे थे।

कलि और द्वापर ने एक अतिथि-गृह मे शरण ली। वहाँ सारी वस्तुएँ राज्य की ओर से मिलती थी।

लेकिन। पुष्कर राजा नल से असतुष्ट था। पुष्कर का स्वभाव जरा उद्दड था। वह अपने यौवन के बल पर कभी-कभी

न्याय का गला घोट देता था। इस पर नल ने उसे हटा दिया था।

इसकी सूचना कलि और द्वापर को मिल गयी। कलि ने द्वापर को पुष्कर के पास भेजा, पुष्कर ने द्वापर से भेंट की।

द्वापर ने झट कहा, "आयपुत्र पुष्कर, मैं पाँसा खेलने मे अत्यन्त चतुर और श्रेष्ठ हूँ। क्या आप मुझसे पाँसा खेलेंगे?"

"मैं आज तक किसी से पाँसा खेलने मे हारा नही हूँ।" पुष्कर ने गर्व से कहा।

"फिर हो जाये बाजी।"

दोनो खेलने लगे। द्वापर ने चौपड के खेल मे पुष्कर को हरा दिया। पुष्कर उदास हो गया।

द्वापर ने कहा, 'उदास क्यो हो रहे हैं आयपुत्र? मैं आपको जुए मे इतना सिद्धहस्त बना दूगा कि भविष्य मे कोई भी आपको नही हरा सकेगा।"

दोनो मित्र बन गये।

इधर कलि राजा नल को प्रभावित करने के लिए प्रयत्न कर रहा था। एक दिन उसे अवसर मिल गया। एक दिन राजा नल को क्या सूझा कि वह सुरा का पान करके महल से निकल पडा।

वह अपने रथ पर था। उसके घोडे हवा से भी तेज भागने वाले थे और वह सारथी भी सर्वोत्तम था।

अचानक सामने एक चट्टान आ गयी। उस चट्टान से जैसे ही रथ भिडता कि इसके पहले ही कलि ने घोडो को रोक दिया। वह घोडा की लगाम पकड कर लटक गया। राजा नल के प्राण बच गये।

राजा नल उसे अपने प्रासाद मे ले आया। कहावत है काले के पास गोरा बैठे, रग भले ही न बदले पर बुद्धि अवश्य बदल जाती है। वही स्थिति राजा नल और पुष्कर की हो गयी थी। समय बीतता गया।

पुष्कर अपने मसार में लीन रहता था। और राजा नल दमयन्ती से दूर-दूर हो रहा था। जिस दमयन्ती से वह एक पल भी अलग नहीं रहता था, उससे वह दो दो दिन और रातें नही मिलता था। दिन-रात क्रीडाओ में मग्न रहता था और सुरा-पान करता था।

एक रात दमयन्ती ने राजा नल को बुलाया। केशिनी स्वयं गयी थी। उसने जाकर देखा कि राजा नल केलि-भवन में नृत्य देख रहे है।

कलि उसके पास बैठा बैठा उनका मनोरंजन कर रहा है।

केशिनी ने नृत्य के बीच बाधा डाल कर कहा, "महाराज, महारानी ने आपको अभी बुलाया है।"

"क्यो ?" राजा नल की आँखें लाल हो गयी। केशिनी काँप उठी। सहमती हुई वह बोली, "राजकुमार इन्द्रसेन और राज-कुमारी इन्द्रसेना का स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया है, महा-रानी घबरा उठी हैं ?"

कलि मुँह बिगाड कर बोला, "बस, इस साधारण बात के लिए तुमने महाराज के अपार आनन्द मे बाधा डाल दी। क्या निषध म राजवैद्य मर गये है ?"

राजा नल ने भी कठोर स्वर मे कहा, "इस बार तो क्षमा कर देता हू। इन साधारण बातो के लिए हमारे आनन्द मे विघ्न डाला तो हम तुम्हे जीवित जला डालेंगे।"

केशिनी हाथो मे मुह छुपा कर लौट आयी। वह दमयन्ती की गोद में पड कर फफक-फफक रोने लगी।

दमयन्ती ने स्नेह से हाथ फेर कर कहा, "क्या बात है केशिनी तुम इस तरह क्यो रो रही हो ? बोलो न ?"

केशिनी ने सारी व्यथा कथा सुनायी। दमयन्ती का हृदय क्रोध से भर गया। वह उसी पल राजा नल के पास गयी। कडक कर बोली 'रोक दीजिए यह नृत्य संगीत।"

कक्ष म स नाटा छा गया। राजा नल का नशा उतर गया।

कलि दुष्टता से मुसकराने लगा।

दमयन्ती ने रुँधे स्वर में कहा, 'कोई राजा रात दिन चौपड़ नही खेलता है, नृत्य नही देखता है। जो ऐसा करता है वह विपत्ति से टकराता है। महाराज, दमयन्ती का ऐसा अपमान आपने कैसे किया ?"

दुष्ट कलि धीमे स्वर में बोला "क्योंकि यह आपके पति हैं। पति को अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ करने का अधिकार है।"

राजा नल ने कलि की बात को दोहराया, 'दमयन्ती ! अपनी सीमा से बाहर मत जाओ। मैं राजा नल हूँ। सैकड़ों गुणो का स्वामी।"

दमयन्ती को लगा कि किसी ने उसकी पीठ पर अनेक कोड़े मार दिये हैं।

राजा नल ने फिर कहा, 'तुम यहाँ से जा सकती हो। भविष्य में हमे बिना पूछे इधर मत आना, समझी।"

अपमान में जल कर दमयन्ती लौट आयी। केशिनी की भाँति वह भी रोने लगी।

जब रोकर हृदय हलका कर लिया तब दमयन्ती ने कहा, "कोई जोर का झझावात आने वाला है। मुझे लगता है कि मेरे भाग्य का तारा डूब गया है।"

केशिनी ने भी शका प्रकट की, "रानी जी, मुझे भी कुछ ऐसा ही लगता है कि निकट भविष्य में अशुभ घटेगा।"

दोनो रात भर सोचती रही।

अन्त मे दमयन्ती ने निर्णय लिया, 'केशिनी, मैं अपने दोनो बच्चो को ननिहाल भेजना चाहती हू। यहाँ उन्हे कभी भी सकट का सामना करना पड सकता है।"

"फिर?" केशिनी ने पूछा। उसकी आँखो मे भय नाच उठा।

"तुम बृहत्सेना को बुलाकर लाओ।" बृहत्सेना नौकरानी

थी। वह तुरन्त आयी। उसने जैसे ही प्रणाम किया वैसे ही दमयन्ती ने कहा, "बृहत्सेना! जल्दी से वार्ष्णेय नामक सूत को बुला लाओ।"

उसके जाते ही केशिनी ने पूछा, "उसे क्यो बुलाया है?"

'मैं अपने दोनो बच्चो को विदर्भ भेजना चाहती हूँ, यहाँ उनकी सुरक्षा का भय है।"

बृहत्सेना वार्ष्णेय को बुला लायी। वार्ष्णेय को दमयन्ती ने अपने पुत्र इन्द्रसेन तथा पुत्री इन्द्रसेना को ले जाने के लिये कहा।

सारथी वार्ष्णेय ने दमयन्ती की आज्ञा का पालन किया।

कलि चेष्टा करने लगा कि अब मैं कौन सा दाव चलाऊँ जिससे राजा नल पुष्कर से जुआ खेलने के लिए तैयार हो जाय?

आखिर उसे अवसर मिल गया।

एक दिन की बात है—

कलि और राजा नल आपस मे बैठे-बैठे पाँसा खेल रहे थे। नल कलि को बार-बार पराजित कर रहा था। नल को घमण्ड का नशा चढ गया था।

वह बोला, "मित्र कलि, मुझे लगता है, मैं इस पृथ्वी का सबसे अच्छा द्यूतक (जुआरी) हो गया हूँ।"

"निःसन्देह महाराज।" कलि ने कहा, "लेकिन एक बात है महाराज?"

'क्या?"

आप पृथ्वी के सबसे श्रेष्ठ सारथी है और आपके भाई के पास पृथ्वी का श्रेष्ठ सफेद बैल है। उसका नाम 'दात' है। मैं समझता हू कि यदि वह बैल मिल जाय तो आप देवताओ की गरिमा को भी मिटा सकते है।

मिल जाय?' चौक पडा राजा नल। बोला, "भाई कलि, वह मुझे मिला हुआ ही समझो। पुष्कर मेरा छोटा भाई है। वह मुझे कभी किसी वस्तु के लिए मना नही करेगा।"

कलि हँस पड़ा।

"अरे, तुम हसे क्यो? क्या तुम्हे मेरी बात पर विश्वास नही होता?"

"नही महाराज।" कलि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा, "वह समय चला गया जब पुष्कर आपकी आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझता था। अब तो ।"

नल ने तुरन्त किसी दास को पुकारा। कहा, "जाओ राजकुमार पुष्कर को अभी बुला कर लाओ।"

दास तुरन्त गया।

कुछ ही पलो मे वह लौटकर आ गया। उसके साथ पुष्कर था, द्वापर था।

पुष्कर ने प्रणाम करके कहा, "क्या महाराज चौपड खेल रहे हैं। मुझे लगता है कि महाराज अब पांसा फेंकने मे सर्वश्रेष्ठ हो गये हैं।"

कलि ने दुष्टता की, "मैं तो चाहूँगा कि एक बार महाराज सारे विश्व को चुनौती देकर नाम उत्पन्न कर दें।"

द्वापर झट से बोला, "पर हमारे राजकुमार पुष्कर भी किसी मे कम नही है। मैं समझता हूं कि महाराज नल को पुष्कर जी पराजित कर देंगे।"

"यह असभव है।" कलि ने कहा।

'आपको भ्रम है।" द्वापर ने उकसाया, तभी पुष्कर ने कलि और द्वापर को शान्त करके कहा, "महाराज, आपने मुझे अभी क्यो बुलाया है?"

'पुष्कर, मुझे तुम्हारा दाँत नामक सफेद बैल चाहिए।"

द्वापर ने बीच मे ही कहा, "आ गया न अवसर? कलिदेव, कर लीजिए परीक्षा कि कौन श्रेष्ठ द्यूतक है।"

"क्या मतलब?"

"पहला दाँव दाँत बैल का ही लगा दीजिए।" द्वापर ने गर्व से कहा, 'मैं समझता हूँ पहले ही दाँव मे महाराजा नल का गर्व

पुष्करजी चूर्ण कर देंगे।"

कलि ने उठकर कहा, "बहुत ही घमण्ड हो गया है। मैं जानता हूँ कि इधर पुष्कर जी अपने आपको बहुत अधिक समझने लगे हैं।"

बात तूल पाती गयी।

थोडी ही देर में नल और पुष्कर के बीच जुआ होना निश्चित हो गया।

इसकी सूचना दमयन्ती को मिली। दमयन्ती तुरन्त समझ गयी कि उसके दिन बदल गये हैं। बुरे दिनो की काली छाया उसके भाग्य पर पड़ गयी है।

वह लपक कर केशिनी के पास आयी। केशिनी को भेजकर उसने नल को बुलाया और प्रार्थना की, "आप इतना अनुचित कार्य क्यो कर रहे हैं स्वामी ?"

"अनुचित ?" नल ने लापरवाही से कहा, "अरे पगली, यह तो हम दोनो भाइयो के बीच क्षणिक मनोरंजन हो रहा है।"

'नही महाराज, मुझे इधर रह रह कर बुरे स्वप्न आ रहे हैं। आप ऐसा मत कीजिए। आप राजा है और राजा का स्वभाव बदलते जरा भी देर नही लगती।"

पर राजा नल ने दमयन्ती की बात को नही माना। अधिक विरोध करने लगी तो नल ने उसे डाट दिया। स्त्री होकर अधिक ज्ञान की बात न करो। मैं स्वयं अपना भला-बुरा समझता हूँ।"

दमयन्ती अपनी सहेलियो केशिनी, सुहासिनी और वन्या से आकर बोली, "मेरे भाग्य का सूर्य निस्तेज हो गया है। अब मेरी रक्षा तो भगवान ही करेगा।"

केशिनी ने दमयन्ती को समझाया, 'नही रा
नारी हैं आपको कोई भी दुख नही दे सकता।"

'सती नारी सदा पति के द्वारा ही दुख पाती
नारी का पति सती के वचनों को नही सुनता, वह

जाता है और दूसरों को भी दुख देता है।"

सुहासिनी ने झट से कहा, "नहीं रानी जी, आप ऐसा क्यों सोचती हैं? महाराज स्वयं समझदार हैं। दो घड़ी जी बहलाने लगे।"

सुशीला दमयन्ती को भाँति भाँति से ढाँढस बँधाती रही पर दमयन्ती के मन में काले बादल मँडराते रहे।

राजा नल जुए का बड़ा प्रेमी था। उसने उसके लिए एक अलग से द्यूत क्रीड़ा कक्ष (जुआघर) बना रखा था। उसमें दोनों के खेलने का प्रबन्ध होने लगा।

द्वापर ने पहले से ही ऐसे पाँसे बना रखे थे जिससे नल कभी जीत ही नहीं सकता था। उन पाँसों का प्रयोग पुष्कर ने खुल कर किया। पहली बाजी में ही राजा नल हार गया। इस पर कलि ने राजा को उकसाया।

दाँव पर दाँव रखे जाने लगे। हीरा, मोती, माणिक, पन्ना, खजाना, राज्य और सब कुछ।

पुष्कर घमण्ड से खिलखिला कर हँसा और बोला, "महाराज, आप अब क्या दाँव पर लगायेंगे? आपके पास ।"

राजा नल उदास होकर बोला, "अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

द्वापर ने झट से कहा, "एक दाँव और लगाइए। इस बार आप हार गये तो आपको निषध छोड़ना पड़ेगा।"

कलि ने कहा "क्या पता इस बार हारा हुआ सब कुछ वापस मिल जाय।"

दाँव लग गया।

दमयन्ती हताश हो गयी।

भ्रष्टाचारियों ने राजा नल को फिर हरा दिया। राजा नल का मुखमंडल पीला पड़ गया। रोता सा दमयन्ती के पास गया।

दमयन्ती उसे देखते ही समझ गयी कि क्या परिणाम

निकला है।

राजा नल अपराधी की भांति दमयन्ती के सामने खडा हो गया। उसकी दृष्टि झुकी हुई थी। वह कुछ बोलना चाहता था पर दमयन्ती ने मना कर दिया, "नही महाराज, आप कुछ भी भी मत कहिए, मैं सब कुछ समझ गयी हूँ। आपकी आँखो की तरलता, उतरा हुआ पीला मुख, कापते हुए अग अग मुझे कह रहे हैं कि आप सब कुछ हार गये है।"

नल की आंखो से आसू बह निकले।

दमयन्ती ने फिर कहा, "आप हताश मत होइए महाराज, जीवन मे सुख दुख आते ही रहते हैं। इनसे घबराना नही चाहिए।"

"दमयन्ती!" राजा नल ने बडी कठिनता से कहा, "मैं सब कुछ हार गया हूँ। यहाँ तक कि यहाँ रहना भी। हमे यह नगर तुरन्त छोडना पडेगा।"

दमयन्ती ने विनम्र स्वर मे कहा, "महाराज, यदि आपको कोई अड़चन न हो तो हम विदभ चलें। हमे वहाँ किसी वस्तु का अभाव नही रहेगा।"

नही दमयन्ती, जो बिना बुलाये अपने प्रिय-से-प्रिय जन के पास भी जाता है तो अपमानित होता है। मान-सम्मान बराबर वालो को दिया जाता है?"

"फिर?"

"मैं चाहता हू कि तुम अकेली विदभ चली जाओ। तुम्हे तुम्हारे माँ-बाप दुख मे गले से लगा लेंगे।"

"नही स्वामी, जो स्त्री अपने पति को सकट मे छोड कर सुख मे रहती है उसे सदैव नरक मिलता है। मैंने आपके साथ अपार सुख भोगा है, इसलिए मैं आपके साथ विकट सकट भी भोगूगी।"

"नही रानी, तू सदा फूलों मे पली है। पुष्पो की सेज पर सोयी है।"

"आपने भी तो कम सुख नहीं भोगा है। भाग्य की ही तो बात है। जब वे दिन नही रहे तो भला ये दिन भी कैसे रहेंगे। अँधेरे के बाद उजाला आता ही है।"

दोनो अपने अपने तन पर एक एक कपडा रखकर चल पडे।

तीनो सहेलियो ने साथ मे चलने का दृढ निश्चय किया पर दमयन्ती ने उन्हे समझा दिया। कहा, "मैं तो पति के सुख-दुख मे भागीदार हूँ। आप सब मेरे दुख मे व्यर्थ ही क्यो भागीदार बन रही है। भगवान तुमको सुखी रखें। अच्छा तो यह रहेगा कि तुम तीनो विदर्भ चली जाओ।'

राजा नल और दमयन्ती महल से निकल पडे। पुष्कर के हृदय पर पत्थर-सा पड गया। उसे लगा कि वह अपने भाई को निकाल कर अच्छा नही कर रहा है।

तभी कलि और द्वापर अट्टहास कर उठे। कलि ने दमयन्ती के पास आकर कहा, "क्यो दमयन्ती, पा लिया देवताओ को छोडकर मनुष्य से विवाह करने का फल?"

द्वापर ने कहा, "अब तुम्हे बडी बडी यातनाएँ मिलेंगी।"

'मैं सब सह लूगी पर अपने स्वामी नल को कभी नही छोडूंगी।"

वे चल पडे। नगर के नर-नारी रो रहे थे।

नल और दमयन्ती चलते रहे। चलते चलते वे एक घोर जगल मे पहुँचे। रास्ते भर नल दमयन्ती को लौट जाने के लिए कहता रहा और दमयन्ती उसे धैर्य देती रही, "राजन्! पत्नी पति का आधा अग होती है। विपत्ति और अभाव मे वह सुख देने वाली होती है। आप मुझसे अलग होने का विचार छोड दीजिए।"

इस तरह कद मूल खाते हुए वे वनवासियो की भाति भटक रहे थे।

एक सुदर तालाब पर उन्होने डेरा जमाया, ठडा पानी पिया। बैठे बैठे इधर-उधर की बातें करते रहे।

अचानक दो सुदर हस तालाब पर दिखाई दिये। उनके पख सोने के थे। राजा नल लालच में आ गया। उसने अपना वस्त्र उतार कर उस पर डाला।

हस उसका वस्त्र लेकर उड गया। दमयन्ती पीडा से तिलमिला उठी।

दमयन्ती ने लम्बा नाम लेकर कहा, 'हम लोगो का बडा दुर्भाग्य है।"

"सच बुरे दिन परछाईं की भांति हमारे पीछे पड गये हैं।"

दमयन्ती ने अपना आधा वस्त्र नल को पहना दिया। नल ने दुखी होकर कहा, "रानी, यह रास्ता ऋक्षवान पर्वत पार करके विदर्भ की ओर जाता है। मैं तुम्हें फिर कहता हूँ कि तुम जाओ। इस घोर जगल मे किसी सुदर स्त्री का निसहाय पुरुष के साथ रहना ठीक नहीं है।"

दमयन्ती ने आँसुओ से गद्गद कठ से कहा 'राजन्! मुझे बार बार ऐसा मत कहिए। इस तरह तो मैं पीडा से व्याकुल होकर मर जाऊँगी। महाराज! मैं आपकी पत्नी हूँ। मुझे अपना कर्तव्य पूरा करने दीजिए। मैं जीऊगी आपके साथ और मरूगी आपके साथ।'

दमयन्ती के दृढ निश्चय को सुन कर नल को धैर्य मिला। उसने कहा, 'दमयन्ती, सही अर्थ मे तुम सती साध्वी पत्नी हो।"

दमयन्ती इससे आश्वस्त हो गयी।

दोनो धूप मे घूमते-घूमते एक झोपडी मे पहुँचे। झोपडी खाली थी। दोनो थक गये थे इसलिए झोपडी मे घुस कर सो गये।

दमयन्ती को तुरन्त नीद आ गयी पर राजा नल नही सो सका। उसे बार-बार दमयन्ती की चिन्ता हो रही थी। वह दमयन्ती को ध्यानपूर्वक देखने लगा। मुरझाये हुए त की भाँति वह मुरझा गयी थी। घने केशो मे धूल के रहे थे गोरा रग काला सा लगने लगा था। थ

हो गया था। फूल से भी कोमल पाँव मे जगह-जगह रक्त रिस रहा था। राजा नल की आँख भर आयी। सोचने लगा, यह बेचारी मेरे कारण सारे दुःख उठा रही है। आह ! मैं कैसा पति हूँ ? मेरे जैसे विवेकहीन पुरुष को मर जाना चाहिए। नही, मरने से तो मैं दमयन्ती से फिर कभी भी नही मिल सकूँगा। यदि इसे वन मे छोड जाऊँ तो वह अपने पीहर पहुँच जायेगी। फिर तो कभी सुख के दिन आ सकते है।

इस आशा से उसे कुछ ढाढस बँधा। वह उठा। झोपडी मे एक पुरानी तलवार पडी थी ! उसे उठा कर लाया। वस्त्र को आधा-आधा चीरा। फिर चुपचाप चल पडा। फिर लौट कर आया। दमयन्ती को देख कर करुण विलाप करने लगा। अपने आप से कहने लगा—लेकिन इस वन मे तो जगली पशु, साँप और अजगर हैं। यही दमयन्ती को खा गये तो ?

उसने तुरन्त अपने मन को समझाया, "इस दमयन्ती को कोई नही खा सकता। यह पतिव्रता है, गुणवती है, भाग्यशालिनी है। प्रभु इसकी रक्षा करेंगे।"

नल रोता-रोता चला गया।

हवा का जोर का अधड चला।

दमयन्ती की आँखें खुल गयी। उसे लगा, हवा साँय-साँय करके जगा रही है। उसने हठात् उठकर देखा। राजा नल उसके पास नही था। उसने व्याकुल होकर पुकारा, "महाराज, महाराज !" वह अपना कटा वस्त्र देखकर चौंक पडी। तीर की भाँति बाहर निकली। करुण क्रन्दन कर उठी। 'महाराज महाराज महाराज !"

उसकी पुकार जगल मे प्रतिध्वनि बन कर गूज गयी। चारो ओर 'महाराज' की पुकार मच गयी।

दमयन्ती की व्याकुलता बढती गयी। थोडी देर मे वह चारो ओर नल को खोजती हुई एक घोर वन की पगडण्डी पर चलने लगी।

दमयन्ती रोते-रोते थक गयी या। उसके नयन लाल हो गये थे।

इसी समय एक व्याध उसे दिखाई पडा। वह अपने अगो को हाथो मे छुपाने लगी। व्याध अकेली दमयन्ती को देखकर दुष्ट बन गया। उसकी वासना जाग गयी। उसने निश्चय किया कि इतनी सुन्दर स्त्री को वह अपनी क्या नही बना लेता। यह सोच कर व्याध दमयन्ती पर झपटा।

दमयन्ती ने साहस नही छोडा। उसने बिजली की तरह कडक कर कहा "नीच, पापी, तुमने मुझे छुआ तो मैं तुम्हे भस्म कर दूगी। मैं दमयन्ती हूँ, जिसने अपने पति के सिवाय किसी के बारे मे सोचा भी नही है।"

व्याध पर दमयन्ती की बात का कोई असर नही पडा। वह तो वासना मे अधा हो गया था। दमयन्ती की ओर बढने लगा।

दमयन्ती ने रास्ते मे टूटी हुई लकडी को उठा लिया। उसने तडातड व्याध को पीटना शुरू किया।

व्याध पीछे हट गया। दमयन्ती को लगा कि वह पापी उसका शील लूटने के लिए कोई नयी बात सोच रहा है। दमयन्ती ने भी इस बीच अपने को तैयार कर लिया। उसने कडक कर कहा, "नीच आगे मत बढना वर्ना मैं तुम्हारे प्राण ले लूँगी।"

दमयन्ती उसके प्राण लेती, इसके पहले ही एक साप ने व्याध को काट लिया। व्याध तडप-तडप कर मर गया।

दमयन्ती ने एक पल सुख की सास ली। नाग देवता को प्रणाम करके बार-बार धन्यवाद दिया। इसके बाद वह पीडा से तडप-तडप कर रो उठी।

उसका रोना सारे जगल मे गूज गया।

कुछ देर रोने से दमयन्ती का हृदय हलका हो गया। उसने अपने आसुओ को पोछा। एक झरने के समीप जाकर उसने अपना मुह धोया। पेड की छाया तले बैठ कर विश्राम करने लगी।

दमयन्ती की दृष्टि सूने आकाश की ओर गयी। आकाश नीला था। उसमे एक भी बादल नही था। उस अनन्त आकाश मे एक अकेला पक्षी उड रहा था, शान्त और नीरव।

उसे देख कर दमयन्ती के मन मे साहस का सचार हुआ। उसने सोचा कि एक अकेला पक्षी इतने बडे आकाश मे उड रहा है फिर मुझे किस बात का भय है? यह पृथ्वी तो अनेक प्राणियो से भरी हुई है।

दमयन्ती चल पडी। उसने दृढ निश्चय कर लिया कि वह इस पृथ्वी पर राजा नल को ढूंढ कर ही दम लेगी।

कई दिन के बाद उसे कुछ व्यापारी मिले। ये व्यापारी बडे ही भले और चरित्रवान थे। उन्होने वन मे भटकती दमयन्ती को देखा तो उनके हृदय मे दया उत्पन्न हो गयी।

एक ने पूछा 'बेटी! इस घोर वन मे तुम अकेली क्यो भटक रही हो?"

दमयन्ती जरा भी नही घबरायी। बोली, "भाई, इस घोर वन मे अकेला वही भटक सकता है, जिसका भाग्य रूठ गया हो।"

"आओ, हमारे साथ चलो। इस वन मे किसी बिरले का ही भाग्य बदलता है।"

दमयन्ती लाचार थी ही उन व्यापारियो के साथ चल पडी।

नल दमयन्ती से अलग तो हो गया पर उसके मन की चिंता मिटी नही। वह बहुत दूर चलने के बाद पुन लौट आया। दमयन्ती को न पाकर वह विकल हो गया।

इधर-उधर ढूंढने लगा। अन्त मे हार कर चल पडा। सोचा जो भाग्य में लिखा है, वही होगा। राजपाट, मान-सम्मान और गौरव खोने के बाद मैं अपनी पत्नी को त्याग दू तो कोई बडी बात नही। यह सब मेरे भाग्य की बात है।

यह सोच कर वह मन की हरी-भरी घाटियो मे चलता रहा। चलते-चलते वह एक तालाब के समीप पहुँचा, वहाँ घना

झुरमुट था। उस झुरमुट में से अचानक आवाज आयी, 'राजन्! मुझे बचाओ। राजा नल, मेरी रक्षा करो, मैं जल रहा हूँ।"

राजा नल उस पुकार की ओर भागा। उसको ज्ञात हुआ कि अग्नि में कोई प्राणी जल रहा है? नल को अग्नि का वरदान था। इसलिए वह अग्नि की स्तुति करके आग में घुस गया। उसमें से एक नाग जाति के कार्कोटक को पकड़ लाया। कार्कोटक ने उसे बहुत ही धन्यवाद दिया।

उसने राजा नल को कुछ कदम चलने को कहा। राजा नल अभी दस कदम ही चला था कि कार्कोटक ने उसे काट लिया। राजा नल का रूप कुरूप हो गया। उसका रंग काला हो गया।

राजा नल ने घृणा से कहा, "दुष्ट नाग, ऐसी कृतघ्नता मैंने पृथ्वी पर नहीं देखी। जिस व्यक्ति ने तुम्हारे प्राणों की रक्षा की, उसको यह पुरस्कार दिया?"

कार्कोटक हँस कर बोला, "राजा नल, मैंने इस स्थिति में यह बहुत ही उत्तम किया है। इससे तुम अपनी असलियत छुपा कर रख सकोगे। यहाँ से तुम राजा ऋतुपर्ण के पास जाओ। अपना नाम बाहुक सूत रखो। नगर में तुमको बड़ी प्रतिष्ठा मिलेगी। जब तुम्हें पुनः असली रूप में आना हो तो इन वस्त्रों को पहन लेना। क्यों राजा, अब तो तुम मुझसे नाराज नहीं हो?"

"नहीं कार्कोटक मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ।" नल ने कहा।

राजा नल अयोध्या की ओर चल पड़ा। वहाँ उसने राजा के सामने अपने गुणों की प्रशंसा की।

राजा ने इतने गुण वाले व्यक्ति को अपने पास रख लिया।

राजा नल का मन दमयंती के लिए बेचैन रहता था। वह चाहता था कि उसे इस बात का पता लग जाय कि दमयन्ती जीवित है और सुख से है।

दमयंती ने चेदिनगर की महारानी को अपनी सारी व्यथा-

कथा कही। इधर राजा भीम को भी इस बात का पता चल गया कि राजा नल जुए मे अपना सब कुछ हार कर कही चला गया है।

राजा भीम ने तुरन्त ही चारो ओर विभिन्न दूत नल-दमयन्ती को खोजने के लिए भेज दिये।

सुदेव नामक ब्राह्मण ने दमयन्ती का पता लगा लिया और उसे लेकर विदर्भ लौट आया। राजा भीम बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने सुदेव को एक हजार गायो का पुरस्कार दिया।

रानी दमयन्ती के पीले मुख को देखा। दमयन्ती ने एकान्त मे अपनी माँ से कहा, 'माँ, मैं बिना अपने पति के जीवित नही रह सकती। आप शूरवीर राजा नल की खोज कीजिए।"

रानी दमयन्ती के दुख से दुखी हो गयी। वह अपनी बेटी को सान्त्वना देने लगी।

राजा भीम ने दमयन्ती को समझाया कि मेरे दूत शीघ्र ही नल को खोज कर ले आयेंगे। तुम जरा भी चिंता मत करो।

राजा विदर्भ ने नल को ढूढने का एक नया ही तरीका निकाला। उसने अपने दूतो से कहा कि वे नगरो मे जा-जाकर कहे कि एक राजा अपनी सुन्दर, सुशील और धर्मपरायण पत्नी को जगल मे अकेला छोड आया। वह इतना बडा विश्वासघाती था कि उसने उस बिचारी का आधा वस्त्र भी ले लिया। उस धूर्त के लिए रानी अब भी दिन-रात रोती है। जिस किसी को वह मिल जाए उसे दुतकारे।

इस बात ने बहुत ही प्रभाव डाला।

एक दूत का नाम पर्णाद था। वह अयोध्या मे पहुँचा। उसने ऋतुपर्ण के पास जाकर यह बात कही।

एकान्त मे बाहुक नामक सारथी आया। दुख भरे स्वर मे बोला, "भाई, किसी पर इतना बडा आरोप मत लगाओ। सभी तो भाग्य के सताए हुए होते है। सकट मे पड कर उस अभागे राजा नल से भी गलती हो गयी होगी। तुम विश्वास करो

वह दुखियारा रात दिन अपनी पत्नी के वियोग मे जल रहा है। कितनी मर्मांतक वेदना वह पा रहा होगा, इसका अनुमान तो वही लगा सकता है जिसकी पत्नी उससे बिछड गयी हो।"

पर्णाद और कठोर स्वर मे बोला, "भाग्य के भरोसे पडकर पत्नी से छल करना कितना घातक है ? अरे ! पुरुष ही इतनी कायरता दिखायेगा, तब नारी की रक्षा कौन करेगा ?"

"तुम कुछ भी कहो विप्रवर, पर मैं इतना ही कहूँगा कि शायद राजा नल दया का पात्र है।"

पर्णाद समझ गया कि यह बाहुक अवश्य ही राजा नल को जानता है।

वह उसी समय विदर्भ लौट आया। राजा भीम को सारा वृत्तांत कह वह दमयन्ती के पास आया। दमयन्ती ने झट से कहा, "वे ही मेरे पति देवता राजा नल हैं। ऐसा मेरा रोम-रोम कह रहा है।"

"लेकिन वे तो बडे कुरूप हैं।"

"कुछ भी हो, मेरा मन कभी भी झूठी साक्षी नही देता।"

पर्णाद को फिर भी विश्वास नही हुआ। दमयन्ती ने तुरंत ही एक चाल चली। उसने राजा भीम को बताया, 'आप एक बार मेरे स्वयंवर की घोषणा करें। इसके लिए आप केवल राजा ऋतुपर्ण को ही कहलाएँ, समय बहुत ही कम रखें। राजा नल के सिवाय इतने कम समय मे कोई भी रथ विदर्भ नहीं आ सकता। इससे हमे सत्य का और पता लग जायेगा कि बाहुक नाम का सारथी राजा नल ही है।"

तुरंत ही राजा ऋतुपर्ण को दमयंती के स्वयंवर की सूचना दी गयी। दमयंती को एक बात का भय भी लगा कि कहीं यह समाचार सुनते ही राजा नल आत्महत्या न कर ले ? इस आशंका मे वह व्याकुल हो उठी।

राजा ऋतुपर्ण ने तुरन्त बाहुक को बुलाया और कहा, "बाहुक ! हमे दमयन्ती के स्वयंवर मे आज ही जाना है। तुम

रथ तैयार करो ।"

"दमयन्ती का स्वयंवर ?" बाहुक चौंक पड़ा। पीड़ा से कराहता हुआ बोला, "नहीं महाराज, नहीं, दमयन्ती का स्वयंवर कैसे हो सकता है। वह तो राजा नल की पत्नी है। विवाहित है।"

"हमें इससे क्या लेना-देना ?"

राजा नल का हृदय टूट गया।

उसे जरा भी आशा नहीं थी कि उनकी इतनी रूपवती, गुणवती और धर्मपरायण पत्नी एक पल में इतनी बदल जाएगी। उसे लगा कि नारी विश्वास करने वाली नहीं होती।

ऋतुपर्ण ने सोच में डूबे नल को कहा, "बाहुक ! तुम किस चिंता में पड़ गए ? अपना रथ तैयार करो।"

बाहुक ने तुरंत ही रथ तैयार किया। उसने जैसे ही विदर्भ में प्रवेश किया वैसे ही बाहुक बना नल उदास हो गया।

दमयन्ती के हृदय में आशा की लहरें मचलने लगीं। उसने तुरंत ही केशिनी को भेजा। केशिनी ने जाकर देखा तो उसके हृदय पर बड़ा आघात लगा। यह तो अत्यन्त ही काला और कुरूप व्यक्ति है। इसकी तो बाँह तक छोटी है।

दमयन्ती को केशिनी ने सब कुछ बता दिया। दमयन्ती का मुख और पीला पड़ गया। फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा।

उसने केशिनी को कहा, 'मुझे विश्वास नहीं होता। केशिनी, इस पृथ्वी पर इतना तेज रथ हाँकने वाला कोई नहीं है। मैं स्वयं उनकी परीक्षा करूँगी। मैं सती स्त्री हूँ। मुझसे मेरा पति कहाँ छुपकर जायेगा ? चलो महाराज के पास।"

दमयन्ती महाराज के पास पहुँची। उसने बाहुक से मिलने की आज्ञा चाही। दमयन्ती के सुझाव को राजा ने अस्वीकार-सा कर दिया। कहा, 'बेटी लोक-व्यवहार में ये बातें अच्छी नहीं लगती हैं। कहीं यह राजा नल नहीं हुआ तो यह बाहुक तुम्हारे बारे में क्या सोचेगा ?"

दमयन्ती को राजा भीम की बात ठीक लगी। पर उसने परोक्ष रूप से परीक्षा करने की ठानी।

उसने केशिनी के साथ अपने दोनो बच्चो को भेजा। उन बच्चो को देखते ही राजा नल का हृदय स्नेह से भर आया। उसने उन दोनो बच्चो को गोद मे उठा लिया। प्यार से चूमने लगा। केशिनी ने पूछा, "क्या बात है बाहुक, तुम इन बच्चो को देख कर गदगद क्यो हो गए? तुम्हारी आँखें क्यो भर आयी?"

राजा नल ने रूँधे स्वर मे कहा, मेरे भी ऐसे ही दो बच्चे हैं।"

"क्या वे ?"

"नही-नही केशिनी, वे मरे नही हैं। वे एकदम तन्दुरुस्त और अच्छे है।

केशिनी ने हठात् पूछा, "तुम मेरा नाम कैसे जान गये?"

राजा नल भी कम चतुर नही था। वह बोला, 'तुम रानी दमयन्ती की विशेष दासी हो, तुम्हे भला यहाँ कौन नही जानता।"

केशिनी ने झटपट आकर दमयन्ती को सारी बात बतायी। दमयन्ती ने उत्साह से कहा, "हो न हो, यह मेरा नल ही है। अवश्य ही यह शापित हो गया है। किसी माया ने इसके सौन्दर्य को हर लिया है। वह एक पल रुक कर बोली, "जाओ, तुम महाराज ऋतुपर्ण को कहो कि आज दमयन्ती आपके बाहुक के हाथ का भोजन खाना चाहती है।

केशिनी ने तुरन्त ऋतुपर्ण से कहा। ऋतुपर्ण ने बाहुक को आज्ञा दे दी।

बाहुक ने भोजन बनाने से मना कर दिया। ऋतुपर्ण ने क्रोध से कहा "बाहुक! हम तुम्हारे स्वामी हैं, हमारी आज्ञा की अवहेलना का दण्ड तुम जानते ही हो? हम तुम्हे सूली पर चढवा सकते हैं।"

राजा नल ने झुंझला कर कहा, "महाराज ! आप समझते क्यो नही, मेरी भी अपनी कुछ विशेषताएँ हो सकती हैं !"

"नही बाहुक, तुम्हे हमारा अपमान नही करना चाहिए।"

अब बाहुक विवश था। वह सघप मे झूलता रहा। उसने सोच लिया कि यदि उसने खाना बना दिया तो पकडा जाएगा। यदि नही बनाया तो महाराज ऋतुपण का अपमान होगा।

राजा नल बडी देर तक एकान्त मे सोचता रहा। अन्त मे उसने निणय किया कि उसे अब अपने आपको प्रकट कर देना चाहिए। अब रहस्य अधिक रहस्य नही रह सकता।

राजा नल के मन मे कुछ शकाएँ और थी। उन्हे दूर करना चाहता था। वह दमयन्ती के पास गया। प्राथना की, "रानी जी, आप मुझसे खाना बनवाना क्यो चाहती हैं ? आपके पास तो पाकशास्त्री है।"

दमयन्ती ने झट से कहा, 'मैं आज अस्वादिष्ट भोजन करना चाहती हूँ।"

"फिर बनाऊँगा।" नल ने अपना निणय सुनाया, "लेकिन इसके पहले मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"पूछिए।"

"कोई पत्नी अपने श्रेष्ठ पति और बच्चो को छोडकर दूसरा विवाह क्यो करती है ?"

"इसलिए कि उसका पति निदयी कसाई की भाँति सत्य-परायण, रूपवती, उसके बच्चो की मा जसी सुयोग्य पत्नी को बन मे छोड कर चला जाता है । बाहुक ! जो पति अपने पत्नी की रक्षा नही कर सकता, उसे पति कहलाने का क्या अधिकार है ? ऐसे कायर और विश्वासघाती पति के सग पत्नी क्या रहे ? बोलो बाहुक !"

नल ने लम्बा सास लेकर कहा, 'जब मनुष्य के बुरे दिन आते है तब उसकी बुद्धि भी उसकी शत्रु हो जाती है । वह बेचारा अपनी रानी के सामने शायद अब इसलिए नही आता

होगा क्योंकि वह अपने को अपराधी समझता है। उसे इतना कठोर दण्ड तो आपको नहीं देना चाहिए। सच, मैं आपको कहता हूँ कि जिस दिन आपके पति को यह मालूम होगा कि आपने विवाह कर लिया है, वह अपने प्राण त्याग देगा।"

दमयन्ती नल की पीडा को समझ गयी। वह तेज स्वर में बोली, "त्याग दे, उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। मैं उस पर थूकती हूँ।"

नल चौंक पडा, 'दमयन्ती!"

और दमयन्ती ने तुरन्त हाथ पकड कर कहा, "महाराज, अब अपने आप को मत छुपाइए। मैंने यह स्वयंवर का नाटक केवल आपको पाने के लिए ही रचा था। दमयन्ती को 'दमयन्ती' राजा नल के सिवाय कोई नहीं कह सकता। देखो, मैंने आपको पा ही लिया।"

नल ने सिर झुका कर कहा, 'हाँ दमयन्ती, मैं ही अभागा और पापी तुम्हारा पति हूँ।"

"नहीं महाराज, ऐसा मत कहिए।" दमयन्ती ने विकल होकर कहा, 'पर आपकी यह दुदशा कैसे हो गयी? सूर्य की तरह तेजस्वी राजा नल अंधेरे के समान काले कैसे हो गये?"

"दमयन्ती! इसकी तुम चिंता मत करो। मैं कुछ ही देर में बिल्कुल ठीक हो जाऊंगा।"

तब दमयन्ती भागकर अपने माँ बाप के पास गयी। उसने सारे समाचार सुनाये। थोडी देर में राजा भीम, उसकी रानी भाग कर राजा नल के पास आये।

तब तक राजा नल ने कार्कोटक के दिये वस्त्र पहन लिये थे। उसमें वह पहले की भांति दिव्य बन गया था।

ऋतुपर्ण को जैसे ही राजा नल के बारे में पता लगा, वह भाग कर आया। उसने राजा नल को गले लगा कर क्षमा माँगी, राजन्! मुझे इसका क्या पता था। अनजाने में जो गलती हुई है, उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

नल ने नम्र स्वर में कहा, "महाराज, मनुष्य समय के आदेश पर चलता है। आपको क्या दोष दूं, मैंने तो अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात किया। समय बड़ा बलवान होता है।"

इस तरह चर्चा करते हुए साँझ हो गयी। विदर्भ के मंदिरों और द्विज घरों में शंख बजने लगे। दमयन्ती को उसकी तीनों सहेलियाँ घेरे हुई थीं। केशिनी ने कन्या से कहा, "आज तो रानी जी को केसर स्नान कराया जाय।"

"नहीं केशिनी!" कन्या बोली, "मैं चाहती हूँ केवड़ा के इत्र।"

सुहासिनी ने हँस कर कहा, "आज तो रानी जी के अंग-अंग से ऐसी ही सुगन्ध आ रही है। भगवान बड़ा दयालु है।"

तभी राजा नल के आने का समाचार मिला। तीनों महल से निकल गयीं।

राजा नल को देखते ही दमयन्ती उससे लिपट गयी। उसके नयनों में अश्रु टपकने लगे। राजा नल धैर्य देता रहा।

दमयन्ती ने कहा, "अब हम क्या करेंगे?"

राजा नल की भृकुटियों में बल पड़ने लगे। कठोर स्वर में बोले "मैं देवताओं की शक्ति को लेकर पुष्कर का नाश कर दूंगा।"

दमयन्ती ने नल को शान्त किया, "नहीं महाराज, आपको मैं ऐसा नहीं करने दूंगी।"

"क्यों नहीं करने दोगी। जिस भाई ने राक्षस की भांति कठोर होकर अपनी भाभी व भाई को निकाल दिया, वह दया के योग्य नहीं।"

दमयन्ती ने दृढ़ स्वर में कहा, "महाराज! मैं आपकी पत्नी और उसकी भाभी हूँ, भाभी मां के समान होती है। मां अपने बुरे बच्चे को भी गले लगाती है।"

नल झुँझलाकर बोला, "लेकिन।"

"बस महाराज, आप कुछ भी कहिए, मैं पुष्कर का अस्तित्व

नही होने दूगी । महाराज ! इसी स्थल पर आकर नारी महान बनती है। आपको पुष्कर को क्षमा करना ही पडेगा।"

नल ने दमयन्ती की प्रशसा की। उसे ममता की देवी कहा।

तभी इन्द्रसेन और इन्द्रसेना को केशिनी ले आयी। राजा नल अपने दोनो बच्चो को एक साथ गोद मे उठाकर प्यार करने लगा।

पुष्कर अवगुणो का घर और अत्यन्त ही निष्क्रिय हो गया था। द्वापर और कलि दोनो उसे कुपथ पर डाल रहे थे। इसी बीच एक दूत ने आकर कहा, 'महाराज नल पधार रहे हैं।'

कलि ने द्वापर को एकात मे लेकर कहा, "भाई हमारा समय समाप्त हो गया है, अब हमे यहाँ से खिसक जाना चाहिए, वर्ना बहुत दुर्गति होगी।"

द्वापर और कलि चुपचाप चले गये। उनके जाने का पता भी पुष्कर को नही लगा, अब पुष्कर ने थोडी वास्तविकता को समझा। पर सच्चाई को समझ कर भी उसकी आँखें नही खुली।

पुष्कर स्वय नगर के द्वार पर आकर खडा हो गया। उसने राजा नल का रथ रोक दिया। उसके सनिको ने राजा नल को सपरिवार घेर लिया।

राजा नल ने पूछा, "क्या बात है मुझे अपने नगर मे क्यो नही घुसने दिया जा रहा है ?"

पुष्कर ने उपेक्षा से कहा, "कौन सा नगर ? यह नगर तो मेरा है।"

'हाँ पुष्कर, यह नगर तेरा है फिर मैं एक नागरिक के रूप मे रह सकता हूँ।"

"नही।"

'तो फिर आओ हम एक बार और हार जीत कर लें।" नल ने दमयन्ती की ओर देख कर बडे ही सयत स्वर मे कहा।

वह चाहता था तो पाँचो देवताओ के वरदान का लाभ उठा कर पुष्कर का सर्वनाश कर सकता था। दमयन्ती ने संकेत किया कि वे शान्त रहे।

पुष्कर जोर से खिलखिला पडा। बोला, 'आप हार-जीत करेंगे ? पर आप दाव पर क्या लगायेगे ?"

राजा नल ने कहा, "दमयन्ती को।"

पुष्कर का चेहरा फक सा रह गया।

'अपने दोनो बच्चो को।"

पुष्कर ने कोई उत्तर नही दिया। वह जुआ खेलने को तैयार हो गया।

इस बार पहले ही दाँव पर पुष्कर हार गया। देखते-देखते पुष्कर अपना सर्वस्व खो चुका। राजा नल ने फिर पूछा, "बोलो क्या चाहते हो ? तुम्हारे साथ मैं कैसा वर्ताव करूं।'

पुष्कर ने कहा, "कुत्ते जैसा।"

तभी दमयन्ती ने बीच में आकर कहा, "नही महाराज, यह मेरा देवर है। देवर बेटे के समान होता है। मैं इसे कोई भी दण्ड नही भोगने दूँगी।"

पुष्कर ने चीखते हुए कहा, "नही भाभी, मुझ जैसे नीच पर आपको दया नही करनी चाहिए। मैं पापी हूँ, मुझे जलती आग म डलवा दीजिए ?"

दमयन्ती ने पुष्कर को शान्त करके कहा, "नही पुष्कर भैया, दोष आप दोनो का नही है, दोष है बुरी सगति का। यह तो कलि और द्वापर का षड्यन्त्र था, हम सबके भाग्य का दोष था, अधिक पश्चाताप मत करो। महाराज, पुष्कर को क्षमा कर दीजिए।"

नल ने पुष्कर को गले लगा लिया।

पुष्कर बालक की तरह रोने लगा। इसी समय पाँचो देवता और अन्य प्रतिष्ठित लोग भी आ गये।

नल ने घोषणा की, "मैं पुष्कर को क्षमा करता हूँ और

उसके सारे अधिकार उसे वापस दे रहा हू।"

सभी ने हर्षध्वनि की।

राजा नल ने कहा, "इस अवसर पर एक बात कहना चाहूँगा कि यदि दमयन्ती नही होती तो आज आप सब को यह शुभ दिन देखने को नही मिलता। यह नारी ।"

दमयन्ती ने लज्जा से सिर झुका कर कहा, "देवता आए हुए हैं उनकी प्राथना करो।"

नल ने देवताओ और गुरुओ को प्रणाम किया। इस प्रकार निपध मे पहले वाली प्रसन्नता और शान्ति आ गयी।

□□

प्रेरणाप्रद साहित्य
(इतिहास-संस्कृति)

स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी सेनानी—भाग-१	श्री व्यथित हृदय	६० ००
स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी सेनानी—भाग-२	श्री व्यथित हृदय	६० ००
स्वाधीनता संग्राम के गांधीवादी सेनानी—भाग-३	श्री व्यथित हृदय	६० ००
हितोपदेश की श्रेष्ठ कहानियाँ—भाग-१	श्री व्यथित हृदय	३० ००
हितोपदेश की श्रेष्ठ कहानियां—भाग-२	श्री व्यथित हृदय	३० ००
श्रेष्ठ जातक कथाएँ—भाग-१	श्री व्यथित हृदय	३० ००
श्रेष्ठ जातक कथाएं—भाग-२	श्री व्यथित हृदय	३० ००
उपनिषदों की श्रेष्ठ कहानियां	श्री व्यथित हृदय	३० ००

श्रेष्ठ बौद्ध कहानियाँ	श्री व्यथित हृदय	३०.००
श्रेष्ठ ऐतिहासिक कथाएँ	श्री व्यथित हृदय	३०.००
श्रेष्ठ पौराणिक कथाएँ	राजकुमारी श्रीवास्तव	३०.००
पंचतंत्र की श्रेष्ठ कहानियाँ	राजकुमारी श्रीवास्तव	३०.००
भारत की श्रेष्ठ लोक-कथाएँ	महेश भारद्वाज	३०.००
श्रेष्ठ वेताल कथाएँ	महेश भारद्वाज	३०.००
श्रेष्ठ पौराणिक नारियाँ	यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'	३०.००



सामयिक प्रकाशन

३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली ११०००२

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

फणीश्वर नाथ रेणु व मीरा पुरस्कारो से सम्मानित हिन्दी और राजस्थानी के विख्यात लेखक यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' गत तीन दशको से साहित्य सृजन कर रहे हैं। उपन्यास, कहानियो और नाटक के क्षेत्र म उन्होने जितना उल्लेखनीय काय किया है उतना ही बाल साहित्य के क्षेत्र मे। उन्होने कई पुरस्कार जीते हैं। बाल तथा प्रौढ साहित्य के क्षेत्र म भी वे भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से पुरस्कृत हैं। इनकी कई कृतियो का अन्य भाषाओ मे अनुवाद हुआ है। वे मसिजीवी हैं, अन जीवन के लम्बे अनुभवो का उनके पास खजाना है। उनके लेखन का क्षेत्र भी व्यापक है। डॉ० रांगेय राघव ने सही ही कहा है—'चन्द्र की कलम साहित्य मे अपना विशेष महत्त्व रखती है।' यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यकारों म यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का अपना विशिष्ट स्थान है।

प्रस्तुत 'श्रेष्ठ पौराणिक नारियाँ उनकी जीवनोपयोगी पुस्तक है जो पठनीय है, साथ ही शिक्षाप्रद भी।